Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाक्षिक

सारिका

वर्ष:२०
अंक:२७३

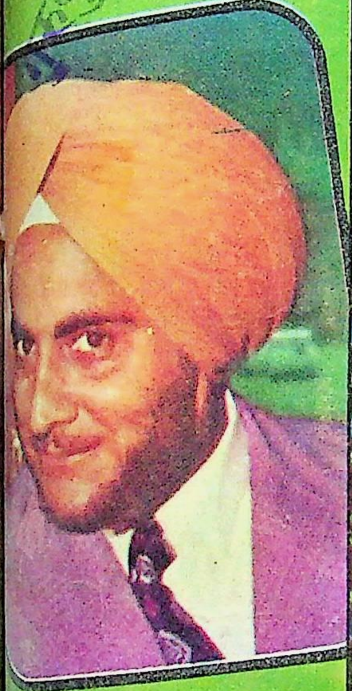

इस अंक में

आधुनिक संदर्भों पर डा॰ महीप सिंह से लंबी बातचीत

दस कहानियां और सभी स्तंभ

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन २.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे सफेद पेण्ट खरीदना है जितनी बड़ी बात, बरसों तक सफेद रहे, यह भी उतनी ही बड़ी बात.

आइए, नेरोलॅक पेण्ट्स की मदद से सही सफेद चुनिए.

अगर आप सफेद पेण्ट खरीदना चाहते हैं तो क्या चाहेंगे– सबसे सफेद, सबसे निर्मल सफेद या बरसों तक निभनेवाला सफेद?

असल में यह सब एक साथ.

इसलिए खरीदने से पहले बस इतना याद रखिए कि कुछ सफेद, डिब्बे में तो ज्यादा सफेद लगते हैं पर होते नहीं. कुछ लगाने पर सफेद दिखते हैं पर बहुत जल्दी पीले पड़ जाते हैं.

असल में, एक बार सब को इस्तेमाल किए बिना, उनमें से एक चुन पाना काफी मुश्किल है. **नेरोलॅक पेण्ट्स** यह मुश्किल आसन कर देते हैं.

1. सफेद का परीक्षण

नेरोलॅक पेण्ट्स, अपने सफेद पेण्टों को दूसरे सफेदों के मुकाबले अलग-अलग मौसमी परिस्थितियों में लगातार जांचते रहते हैं. यह सिद्ध हुआ है कि **नेरोलॅक** के सफेदों की तुलना में दूसरे सफेद जल्दी पीले पड़ने लगते हैं. सच पूछें तो **नेरोलॅक** के सफेदों के मुकाबले, दूसरे उतने सफेद हैं भी नहीं. कोई भी सफेद, उतने समय तक सफेद रहते ही नहीं.

2. उज्ज्वल रंग-छटाओं के लिए निर्मल सफेद

बहुत बार, आपकी पसंद का कोई विशेष पेस्टल शेड पाने के लिए पेण्टर, सफेद पेण्ट को उपयुक्त 'स्टेनर' से मिलाते हैं. स्पष्ट है कि प्राप्त रंग-छटा की निर्मलता, सफेद की निर्मलता पर निर्भर करती है. इसलिए विश्वास कर लीजिए कि आपने सबसे निर्मल सफेद ही खरीदा. **नेरोलॅक**

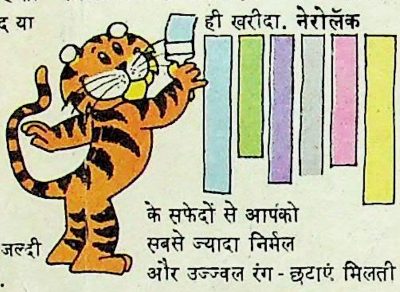

के सफेदों से आपको सबसे ज्यादा निर्मल और उज्ज्वल रंग-छटाएं मिलती हैं.

3. सफेद की श्रेणी

नेरोलॅक पेण्ट्स पेश करते हैं इन तीन वर्गों में, ऊंचे दर्जे के, सफेदों में सबसे सफेद पेण्ट.

अपनी पसंद के सफेद का नाम कहिए और मांग कर लीजिए.

- **नेरोलॅक अल्ट्रा वाइट सिंथेटिक एनॅमल**
- **नेरोलॅक वंडर वाइट एक्रिलिक इमल्शन सिलिकोन के साथ**
- **नेरोलॅक का सुपर वाइट सोल्जर ब्रॅण्ड ऑइल बाउंड डिस्टेंपर**

नेरोलॅक पेण्ट्स का सर्वोत्तम लाभ उठाने के लिए, नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका **'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें'** की अपनी मुफ्त प्रति के लिए लिखिए. नीचे दिए कूपन को भरकर फौरन डाक से भेज दीजिए.

ULKA-GNP-169 HN

नेरोलॅक पेण्ट्स

नेरोलॅक लगाइए! रंग में आइए!!

कृपया मुझे नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका की एक हिंदी प्रति भेज दीजिए.

नाम :...

पता :...

....पिन कोड :..................

गुडलॅस नेरोलॅक पेण्ट्स लिमिटेड
बिक्री विभाग, पी. ओ. बॉक्स नं. 16322
बम्बई-400 013.

169-P

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

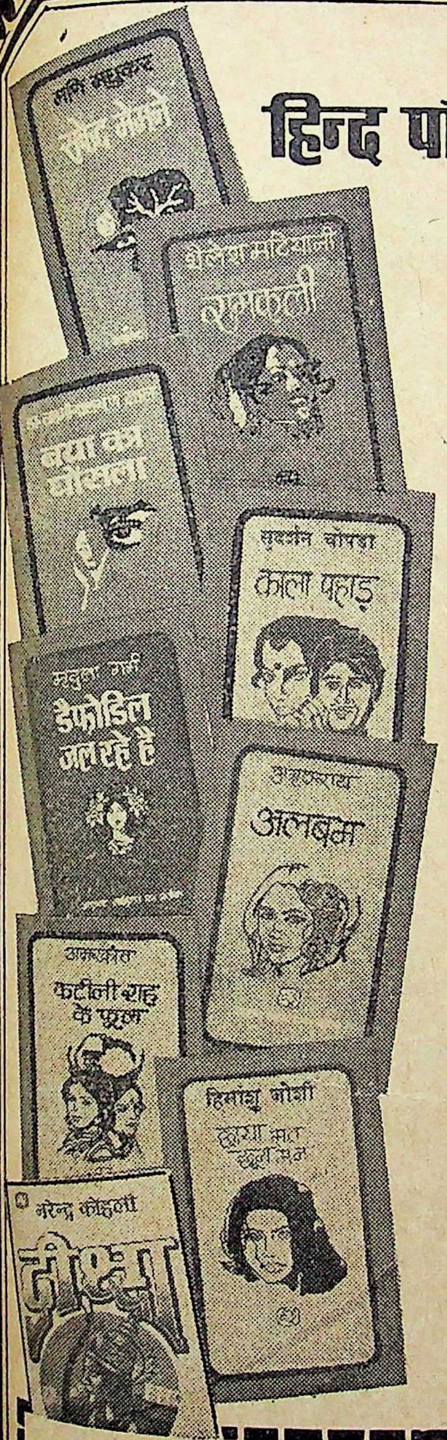

अपनी गौरवशाली परम्परा में

हिन्द पॉकेट बुक्स का एक और कदम

हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन

अब आपके लिए उपलब्ध हैं हिन्दी के वे श्रेष्ठ उपन्यास जिन्हें आप अवश्य पढ़ना चाहेंगे

महासागर	हिमांशु जोशी	४.००
कटीली राह के फूल	अमरकांत	४.००
मेरा अपना संसार	नरेन्द्र कोहली	३.००
पिता दर पिता	रमेश बक्षी	३.००
वापसी	बदीउज्जमा	४.००
अलबम	अमृत राय	४.००
यह भी नहीं	महीप सिंह	४.००
सफेद मेमने	मणि मधुकर	४.००
रामकली	शैलेश मटियानी	४.००
बेघर	ममता कालिया	४.००
दीक्षा	नरेन्द्र कोहली	४.००
अवसर	नरेन्द्र कोहली	४.००
निशांत	विजय तेंदुलकर	४.००
उसके हिस्से की धूप	मृदुला गर्ग	४.००
डेफोडिल जल रहे हैं	मृदुला गर्ग	५.००
एक खाली जगह	अमृता प्रीतम	३.००
काला पहाड़	सुदर्शन चोपड़ा	३.००
परिन्दे	निर्मल वर्मा	३.००
छाया मत छूना मन	हिमांशु जोशी	३.००
बया का घोंसला	लक्ष्मी नारायण लाल	४.००
सोमा	सत्यकाम विद्यालंकार	४.००

20 रुपये की पुस्तकें पर पोस्ट फ्री मंगाएं

हिन्द पॉकेट बुक्स

जी०टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

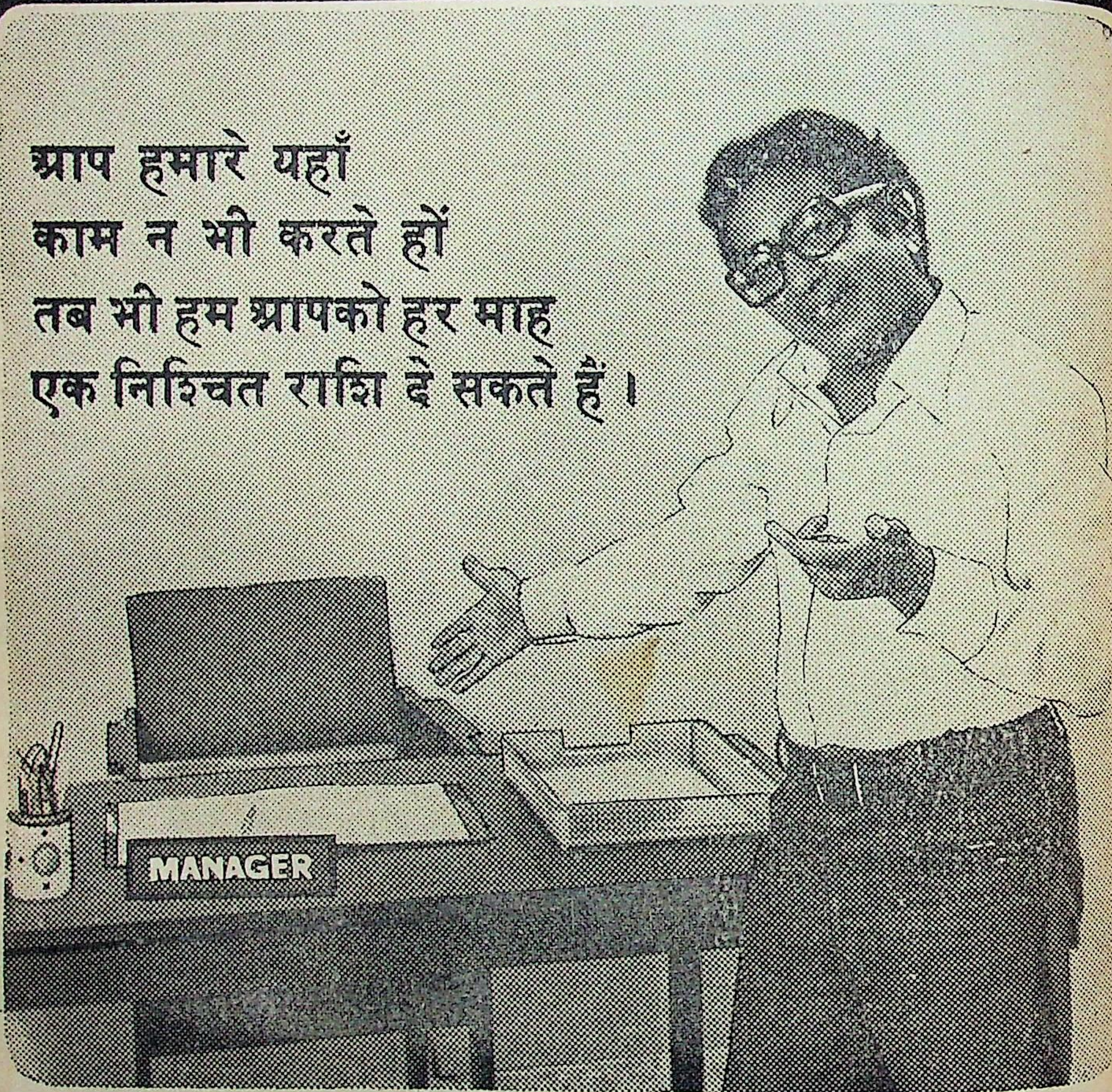

बड़ी बात !

जी नहीं ! पी एन बी की विशेष सावधि जमा योजना में खाता खोल कर ग्राप हर माह ग्रतिरिक्त राशि प्राप्त कर सकते हैं।

यदि ग्राप 63 महीने के लिए 30,000 रु. जमा कराते हैं तो ग्रापको हर माह 247.92 रु. ब्याज के रूप में मिलेंगे।

एक वर्ष में बंक जमा तथा ग्रन्य निवेशों पर मिलने वाले 3,000 रु. तक के ब्याज पर ग्रायकर की छूट है।

ग्राज ही ग्रपना खाता खोल कर हर माह ब्याज लीजिए।

पंजाब
नैशनल
बैंक
(भारत सरकार का उपक्रम)
...भरोसे का प्रतीक!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक दृष्टि और प्रासंगिकता ही "अक्षर" की अद्वितीयता है

'अक्षर' की ओर से रंगमंच पर बार-बार सफल और समर्थ नौ मानक नाटक

१. खड़िया का घेरा—बार्टोल्ट ब्रेख्ट, अनुवादक, कमलेश्वर (दूसरा संस्करण) मूल्य २० रु.
२. आला अफ़सर (नाटंकी शैली में, गोगोल के नाटक इंस्पैक्टर-जनरल से प्रेरित) मुद्राराक्षस १२ रु.
३. बिना दीवारों के घर : (संपूर्ण नाटक) मन्नू भंडारी ८ रु.
४. उत्तर प्रियदर्शी (गीत-नाटक) अज्ञेय ४ रु.
५. बाकी इतिहास : बादल सरकार, अनुवादक नेमिचंद्र जैन ८ रु.
६. कथा एक कंस की : दया प्रकाश सिन्हा १० रु.
७. इतिहास चक्र और ओह अमेरिका (दो नाटक) दया प्रकाश सिन्हा ७ रु.
८. एक कम्युनिस्ट का जन्म : तोप्पिल भासी, अनु. लक्ष्मण शास्त्री ६ रु.
९. मूलधन—तोप्पिल भासी, अनुवाद : लक्ष्मण शास्त्री ६ रु.

नाट्य-समीक्षा पर दो विलक्षण पुस्तकें

१. एब्सर्ड नाट्य परंपरा : डा. रामसेवक सिंह, आधुनिक नाट्य आंदोलन का विशद परिचय ८ रु.
२. हिंदी नाट्यकारों के नाट्य सिद्धांत : डा. निर्मला हेमंत हिंदी नाटककारों की वृहद परिचयात्मक समीक्षाएं और नाट्य-सिद्धांतों का विश्लेषण ५५ रु.

'अक्षर' की ओर से कथा-समीक्षा पर प्रस्तुत हैं दस अपरिहार्य पुस्तकें

१ औरों के बहाने (व्यक्तित्व संश्लेषण) राजेंद्र यादव ३५ रु.
२. 18 उपन्यास (महत्त्वपूर्ण उपन्यासों पर समीक्षाएं) राजेंद्र यादव ३५ रु.
३. उपन्यास : स्वरूप और संवेदना (औपन्यासिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण) राजेंद्र यादव ३५ रु.
४. प्रेमचंद की विरासत (चिंतन और निबंध) राजेंद्र यादव २५ रु.
५. एक दुनिया : समानान्तर (स्वतंत्रता के बाद की कहानियां) राजेंद्र यादव ४० रु.
६. भारतीय-अंग्रेजी कथा-साहित्य (भारत में लिखे जा रहे अंग्रेजी कथा-साहित्य की समीक्षा) डा. सेवक सिंह ३० रु.
७. कहानी : रचना प्रक्रिया और स्वरूप : (नितांत मौलिक दृष्टि से हिंदी कहानी की पड़ताल) बटरोही १० रु.
८. आंचलिकता और हिंदी उपन्यास : डा. नगीना जैन ३५ रु.
९. आधुनिक हिंदी-कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि (पहली बार समाजशास्त्रीय दृष्टि से हिंदी कहानी की विस्तृत जांच) डा. रघुवीर सिन्हा १० रु.
१०. हिंदी कहानी : अलगाव का दर्शन : डा. चार्ल्स गॉर्डन रोडरमल अनुवाद : अर्चना सिन्हा भूमिका : डा. बच्चन सिंह ३० रु.

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०
२/३६, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदर्द ग़ायब

सिर्फ़ एक

सेरिडॉन से

ट्रेडमार्क 'रोश'

शक्तिशाली
सुरक्षित
सिर्फ़ एक काफ़ी है.

RP 5977

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

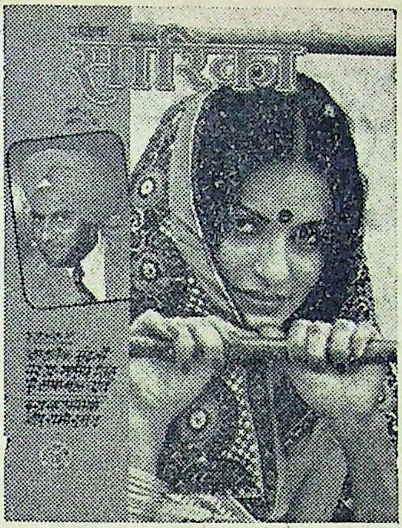

आवरण : फाल एस. गिरोटा

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 273; 16 से 30 नवंबर, 1980

कहानियां

31. अपनी जमीन : **मेहरुन्निसा परवेज़**
34. आखिरी सांस का किराया : **राबिन शॉ पुष्प**
44. कच्ची सड़क : **अब्दुल बिस्मिल्लाह**
48. कुत्ते की मौत : **मृणाल पांडे**
51. सजा : **भगवान अटलानी**
54. बीच रात में (मैथिली) : **शैवाल**
57. सभ्य लोगों का दर्द : **रज्जन त्रिवेदी**
62. मुरली : **आलोक मेहता**
66. घायल घोड़ा : **हरि मोहन**

उपन्यास

20. कोई तो (अंश) : **विष्णु प्रभाकर**
27. खुदा सही सलामत है (धारावाही) : **रवींद्र कालिया**

साक्षात्कार

12. "आज के पाठक की रुचि बहुत प्रयोगधर्मा कहानी पढ़ने में नहीं है!"
15. "सांप्रदायिकता से जुड़ना ही होता तो मैं अकाली न बन जाता!"
डा. हरदयाल और कन्हैयालाल नंदन की डा. महीप सिंह से लंबी बातचीतें

ग़ज़ल

53. **लालजी 'आलम' हथगांवी**

विशेष

24. अनजानी इतिहास कथाएं—पर नारी पैनी छुरी : **बाला दुबे**
41. गांव की कहानी : परिचर्चा-परीचर्चा : **अजित कुमार**

लघु रचनाएं

23. तीस रुपये : **छाया वर्मा**
33. धरम की बात : **विमल किशोर**
36. सौ रुपये (रूसी) : **ईवान बुनिन**
37. सामाजिक-असामाजिक : **कुलदीप जैन**
43. सीढ़ियां : **प्रियंवद**
60. स्थायी : **सुरेश अवस्थी**
64. भगवान के नाम पर : **मार्टिन जॉन 'अजनबी'**

अन्य आकर्षण

8. पाठकों का पन्ना
11. ज़रिया-नज़रिया
26. पढ़ते-पढ़ते : **किट्टू**
38. तस्वीर बोलती है : **लवलीन**
65. गपशप : **ऑस्कर वाइल्ड**
68. पखवारे की पुस्तकें
70. हलचल
71. पत्र-पत्रिकाएं
71. उनने कहा था

...पादक
...न्हैयालाल नंदन
...उप-संपादक :
...नारायण मुद्गल
...संपादक :
...बतरा, सुरेश उनियाल,
...राम, अरुण वर्द्धन
...ज्जा : रवि शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों का पन्ना

ऐसा कई बार हुआ है

सितंबर के प्रथम अंक में फिराक़ साहब का मायूस कर देने वाला गैररस्मी 'इंटरव्यू' पढ़ने को मिला. इसी प्रकार का, इलाहाबाद के एक पत्र में बातचीत के दौरान सन् 44–45 के आसपास भी, उन्होंने अंतर्विरोधों से भरा इंटरव्यू दिया था. वहां भी उन्होंने भारतेंदु से लेकर निराला तक के साहित्य को 'घटिया और बचकाना' करार दिया था. 'हिंदी के बेकन' आ. शुक्ल सरीखे निबंधकार के लिए इन्होंने कहा था कि "उनसे अच्छा निबंध कालेज के विद्यार्थी लिख लेते हैं." साथ-साथ यह भी कि "कोई नयी चीज देना तो दूर, शुक्लजी जैसे आलोचकों में यह तमीज भी न थी कि ग्रियर्सन वगैरह की लिखी आलोचना समझ भी सकें." ठीक उसी प्रकार के बयान से हिंदी के आद्याचार्यों, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा भारत-भारती के प्रणेता, मैथिलीशरण गुप्त को 'भारतीयता का दुश्मन' कहकर पुनः उसी 'हिंदी विरोधी मानसिकता' को फिराक़ ने दुहराया है. हिंदी से ईर्ष्या और रंजिश की बानगियां फिराक़ साहब अपनी जिंदगी में कई बार गोष्ठियों, परिचर्चाओं, पूज्य निराला सरीखे संदर्भ में, अभद्र गाली-गलौजों के रूप में भी दे चुके हैं.

■ **शिवदत्त चतुर्वेदी, वाराणसी.**

पाये का बदल

फिराक़ साहब शायद यह भूल गये कि उन्होंने हिंदी की बदबू न केवल स्वयं सूंघी है, वरन उसे उर्दू की ग़ज़ल को भी सुंघवाया है. फिराक़ साहब की शायरी में अगर अंग्रेजी से निखार आया है तो हिंदी ने भी उसे कहीं न कहीं जरूर महकाया है! फिराक़ साहब से पूछा जाये कि उन्हें अपनी ग़ज़लों में—रस, रसमसाई, सुहागरात, किरन, लोरियां झिझक, पुरवाइयां और गुत्थी जैसे हिंदी के या हिंदी से जन्मे शब्दों का प्रयोग करते समय उबकाई क्यों नहीं आयी.

फिराक़ साहब (ईश्वर उन्हें और लंबी उम्र दे) हिंदी साहित्य को पढ़कर देखें. बोधा कई सौ साल पहले नायिका के अधरों की उपमा 'बीरबहूटी' से दे चुके हैं. फिराक़ साहब अपनी खुशबूदार जुबान के ज़रिये अभी इस पाये का बदल नहीं दे सके हैं. फिर भी किसी भाषा अथवा साहित्य विशेष के प्रति हमारी घृणा हमारी मानसिकता की विकृति का उद्दीपन है. दुनिया के श्रेष्ठतम साहित्यकारों में तुलसीदास और डर्टियेस्ट लिपि और बदबूदार जबान—हिंदी—दो विरोधी मत फिराक़ साहब को समझने में उलझन पैदा कर रहे हैं.

■ **ओम राज, रामपुर.**

बेबाक स्वीकृति

सितंबर 80 की 'सारिका' देखने को मिली. चौरासी वर्षीय जनाब फिराक़ की बेबाक स्वीकृति 'बदबूदार, अवैज्ञानिक जबान और डर्टियेस्ट लिपि' में विश्व का श्रेष्ठतम साहित्यकार (तुलसी) पैदा करने की सामर्थ्य है.

■ **साधु शरण, मुजफ्फरपुर (बिहार).**

भारतीयता के रक्षक कौन!

मैथिलीशरण गुप्त, भारतेंदु और महावीरप्रसाद द्विवेदी यदि भारतीयता के दुश्मन थे तो फिर भारतीयता के रक्षक कौन हैं? क्या वे लोग, जो खूबसूरत लड़कों को अपनी अर्दली में रखकर साहित्य सृजन कर पाते हैं. हिंदी वाले इस तरह की गालियां क्यों बर्दाश्त करते हैं?

■ **ईश्वरचंद्र मिश्र, जबलपुर.**

हां, ध्यान से सुनना!

'हां, ध्यान से सुनना ये सदी बोल रही है.' फिराक़ गोरखपुरी के साथ उमाकांत मालवीय की एक गैररस्मी बातचीत फिराक़ को समझने के लिए पाठकों को खुली दृष्टि और पूर्वग्रहरहित संवेदन प्रदान करती है. निश्चय ही इस साक्षात्कार से फिराक़ का व्यक्तित्व, सोच का धरातल और कुछ वैचारिक सवालात उभरकर पाठकों के समक्ष नये रूप में आये हैं.

■ **राजेंद्र रंजन, गोरखपुर.**

तुलसी बुरा न मानिए...

सारिका, 1 सितंबर, 1980 में उमाकांत मालवीय द्वारा फिराक़ साहब साक्षात्कार पर इतनी तीव्र प्रति[illegible] हुई है कि हिंदी दिवस पर 'सारिका' प्रतियां जला दी गयीं. शाम को [illegible] विद्यालय में छात्रों ने फिराक़ का [illegible] जलाना चाहा, पर समझाये जाने पर गटर में फेंक दिया गया. फि[illegible] साहब तुलसीदास को सबसे बड़ी [illegible] लब्धि मानते हैं—यह मानस का ही [illegible] है कि फिराक़ हत्यारे, चोर, डकैत, पर[illegible] गमन, बलात्कार, कालाबाजारी, त[illegible] रंडीबाजी और अप्राकृतिक मैथुन को [illegible] नहीं मानते?—अनेक पाठक उन्हें [illegible] बुरा कह सकते हैं, पर वे शायद [illegible] जानते हों : **तुलसी बुरा न मा[illegible] जो गंवार कहि जाय.**

■ **डा. विश्वभावन देवलिया, जबलपुर**

धर्म के नाम पर

हमारे अस्पताल में हर दिन मौतें होती रहती हैं, परंतु आज जो दो मौतें हुई हैं, उन्होंने मुझे आपको खत लिखने को मजबूर कर दिया है.

तेरह अक्तूबर की रात को एक मोटर साइकिल पर एक नौजवान अपनी पत्नी और बच्ची के साथ रामगढ़ से रांची आ रहा था. रास्ते में एक जगह सड़क के बीच में दुर्गापूजा के गेट बनाने के लिए सड़क पर तीन-चार गड्ढे खोद दिये गये थे. उसी में फंसकर मोटर-साइकिल दुर्घटनाग्रस्त हो गया. नौजवान और उसकी पत्नी की मौत आज हो गयी है, परंतु बच्ची को बचा लिया गया. पूजा जिस धूम-धाम से होनी थी, हो रही है. पुलिस वाले इसे 'धार्मिक कामों में अड़चन डालना' कहकर टाल गये. मैं सबकी बात मान लेता हूं, परंतु यह बच्ची समझती ही नहीं, बस रोती है, मां-बाप को खोजती है.

आपको खत लिखने का कारण है कि आगे से धर्म के नाम पर बच्चे अनाथ न बनाये जायें.

■ छवि विश्वास, रांची.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...दा खैर करे

...फिराक़ साहब वड़े हैं. वड़ों की बात ...जानें. मैं अपनी छोटी-सी बुद्धि से ...समझ नहीं पा रहा हूं. हिंदी वालों को ...ली देना उनके बड़प्पन को वढ़ाता है ...? खुदा खैर करे!

...मथुर, सिवनी (म. प्र.)

...रेबाजार पेशी

...मुखपृष्ठ पर रसीली युवतियों के चित्र ...अंदर के पृष्ठों पर कमलादास जैसी ...कथित वेवाक लेखिका के अश्लील ...लों को उछालकर आपने हिंदी साहित्य ...प्रबुद्ध पाठक-पाठिकाओं का सचमुच बड़ा ...किया है.

...कमलादास कहती हैं, **'मेरी कहानी'** ...शों में काफी लोकप्रिय है. भारत में भी ...लिता', 'लेडी चैटरली का प्रेमी,' 'रोम ...नगरवधू' आदि काफी लोकप्रिय हैं. ...सका कारण है सेक्स की खुल्लमखुल्ला ...चर्चा—और कोई खास बात नहीं. ...होंने कहा है कि जर्मन प्रकाशक उनकी ...0 तस्वीरें विदेशों में प्रकाशनार्थ ले गये ...उनकी किताब फाइव स्टार होटलों में ...ी जायेगी. क्या उन खूबसूरत तस्वीरों ...नुमाइश के सहारे कमलादास अपने ...न क्षेत्र का विस्तार करना चाहती हैं? ...मैं नहीं जानता विश्व की किसी संभ्रांत ...का ने अपनी प्रसिद्धि के लिए इस ...ार अपने आपको सरेवाजार पेश किया

...अमय कुमार अंबष्ठ, जमशेदपुर

...री चुप क्यों हैं?

...ला दास की 'मेरी कहानी'
...मात्र
...आवारा औरत की
...गी और जलालत है,
...समाज पर ठोक दी गयी है
...विख्याति और बड़प्पन के लिए.
...मर्द के जुर्म के खिलाफ तो
...गला फाड़ रही है,
...नारी, नारी पर जो अन्याय
...रही है, उसके लिए
...क्यों मौन है?

...ओमप्रकाश शर्मा, चंडीगढ़

अग्नियात्रा के मुसाफिर अधिकांशतः युवा हैं!

आपने लिखा है. . .हम उन सभी के साथ हैं, जो इस दौड़ में पसीने-पसीने हैं, हांफ रहे हैं, मगर दौड़ रहे हैं, समय की धारा के वरखिलाफ उसकी सतह से चाहे आध इंच सही, ऊपर उठकर धारा को काट रहे हैं. . .उन मानवीय मूल्यों के मसीहाओं को शत् शत् नमन्, जो भले ही मजबूरी में सही, आग में कूद तो रहे हैं. . .फिर आपने जनाव शमीम फारुकी की गजल कही है.

मैं यह कहूंगा कि इस चिरंतन अग्नियात्रा के मुसाफिर अधिकांशतः युवा ही हैं. हां, वही युवा जो इस प्रज्जवलित अग्निपथ पर निरंतर चलते, दौड़ते और हांफते हुए भी अंधकार के एक गहनतम वर्तुल में कैद हैं, क्योंकि सुविज्ञ मानव समाज का जो तथाकथित 'सफल-स्थापित' चिंतनशील तबका (बुद्धिजीवी वर्ग) है, वो तो संघर्ष, अवाम और जद्दोजहद के नारों को हवा में उछालता हुआ स्वयं आरामपूर्वक किसी महावृक्ष की शीतल छाया में श्वास ले रहा है, सुस्ता रहा है, विश्रामरत है. विश्रामोपरांत जब-तब वो उसी महावृक्ष की छाया तले से कुछ बोल-बक देता है, किंतु जीवन के गहन तम-तोम से भरी हुई दुस्सह अग्नियात्रा के साक्षी यही युवा हैं, जो बढ़ रहे हैं, चल रहे हैं, घोर अंधकार के मध्य पवित्र अग्निपुंज की नाईं जल रहे हैं, और उसी के आलोक में दौड़ रहे हैं, हांफ रहे हैं, गिर रहे हैं, उठ रहे हैं, खो रहे हैं, वो रहे हैं—मगर किसी भी कीमत पर निरंतर चल रहे हैं. कहना यही चाहता हूं कि 'महावृक्ष की छांह' तले विश्रामरत (नितंर वर्ण-बुद्धिविलास करता हुआ) बुद्धिजीवी खेमा क्या इन अग्निवाहकों के अग्निपथ में कहीं किसी लघुतर वृक्ष की छांह प्रदान कर सकेगा! जिसके तले रुककर, सुस्ताकर, वो अग्निपुत्र पल दो-पल के लिए ही सही अपनी खोयी हुई तथा वेहद थकी हुई जीवनी-शक्ति में नव-जीवन संचार कर सके, अपने पथ का पाथेय जुटा सके. हां 'दुष्यंत' के लफ्जों में कहूं तो वैसी 'छांह' की आस' इन युवाओं को कदापि नहीं, जहां :

(यहां) दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए.

यह एक ध्रुव सत्य है कि अग्निपथ के इस 'शाश्वत मुसाफिर' के जीवन की डोर तक एक दिन यूं ही इसी अग्नियात्रा के वीच चलते, दौड़ते, भागते और हांफते हुए किसी भी अ-विश्रामस्थली पर सहसा टूट जाती है, एक जीवित मर्सिये को शेष छोड़कर! तो क्या यह साधन-संपन्न बुद्धिजीवी-समाज अपने गहन मनन और चिंतन की सद्यप्रवाहिता निर्झरिणी के जल में गोते लगाकर उस अग्निवाहक की जीवन डोर को पकड़ने का यत्न भी करेगा. और करेगा तो कब?

▣ **सिद्धार्थ रेणु, लिटिल थियेटर ग्रुप, कोपरनिकस मार्ग, नयी दिल्ली**

मुद्राराक्षस के अज्ञान का इलाज

'सारिका' वर्ष : 20; अंक : 269 में श्री मुद्राराक्षस से विनयदास की बातचीत 'साक्षात्कार' के अंतर्गत पढ़ने को मिली. कोई भी लेखक अपनी व्यक्तिगत धारणा बनाने के लिए स्वतंत्र है, किंतु जब उसका कोई कथन सार्वजनिक उपयोग हेतु प्रकाशित किया जाता है, तब उसमें यथार्थता एवं तथ्यात्मकता अवश्य होनी चाहिए.

श्री मुद्राराक्षस ने संस्कृत में निहायत बेहूदा भी देखा और मूल्यवान भी. वेद उनको बेहूदी रचनाएं, गाने भर लगे. यह वही कह सकता है, जिसने वैदिक साहित्य का दूर से भी दर्शन नहीं किया. धर्म, दर्शन और आचार संबंधी वेद-पद्यों को छोड़ भी दिया जाये तो वाक्सूक्त सौमनस्य सूक्त, पृथिवी सूक्त आदि ऐसे असंख्य पद्य हैं, जिनमें जन साधारण के मन की आवाजें सुनी जा सकती हैं. अगर ये सभी वातें बेहूदी हैं तो फिर सलीके की बातें क्या होंगी? अज्ञान को विज्ञान मानने वालों का कोई इलाज नहीं.

वैसे यह ठीक भी है, जो पोर्नोग्राफी को देखते-देखते उसमें अच्छी और बुरी की तमीज पैदा कर सके और केवल उत्तेजनावश धार्मिक कृति से उसे अच्छी मान सके तथा जो अतीत को अपनी इच्छानुसार परिवर्तनीय भी मान ले, ऐसे विद्वान (?) के द्वारा कुछ भी कहा जाना संभव है.

▣ **कृष्णकांत चतुर्वेदी, जबलपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपना जनवादियों का रँगीन पत्रिकाओं में

सारिका, अंक 270 में आपने किन्हीं श्री हरीश नवल का पत्र प्रकाशित किया है–'–छद्मनाम लेखन की नैतिकता का सवाल'. वैसे मैं इस गोष्ठी में शामिल नहीं था, लेकिन श्री प्रेम जनमेजय द्वारा उठाये गये तीन प्रश्न विचारणीय अवश्य हैं. प्रत्येक ईमानदार लेखक, संपादक, पाठक को इस विषय पर बात करनी चाहिए.

यह सच है कि छोटी पत्रिकाएं या स्पष्ट कहिए कि तथाकथित जनवाद का ढोल पीटने वाली पत्रिकाएं और उनके रजिस्टर्ड लेखक, जो बड़ी पत्रिकाओं को पूंजीवादी प्रतिष्ठानों की रंगीन, कुख्यात, चटखारे लेने वाली पत्रिकाएं बताते हैं, वे भी स्वयं अपनी पत्रिकाओं के मोटे-मोटे विशेषांकों को पुस्तकाकार में बाइंड कराकर ऊंचे मूल्यों पर बेचते हैं और लेखक को पारिश्रमिक या रॉयल्टी तो दरकिनार, पुस्तक की एक प्रति तक नहीं भेजते हैं. उस समय उनका शोषण और अत्याचार का नारा खोखला साबित होता है.

इन्हीं पूंजीवादी प्रतिष्ठानों की पत्रिकाओं के विरुद्ध जिस आंदोलन को चलाने की बात बार-बार अनेक जनवादी पत्रिकाओं के संपादकीय तथा विभिन्न लेखों और जनवादी सम्मेलनों में उठायी जाती है, वह कभी कोई रुख नहीं पकड़ पाया. उसके पीछे भ्रष्ट तथाकथित जनवादियों के गलत मंसूबे हैं. सच तो यह है कि वे स्वयं भी इन रंगीन पत्रिकाओं में छपने के मोह से मुक्त नहीं हैं. जो किसी पार्टी के सदस्य हैं, उनकी मजबूरी है कि वे स्वयं अपने नाम से इन पत्रिकाओं में नहीं छप सकते, लेकिन पैसा उन्हें भी चाहिए. वे या तो अपनी पत्नी के नाम से या फिर छद्म नाम से लिखते हैं. अगर अब नहीं छपते हैं तो वे ही लेखक-संपादक हैं, जो किसी जमाने में सिर्फ लेखक ही थे और इन्हीं रंगीन कुख्यात पत्रिकाओं में धड़ाके से छपते थे. आज वे पार्टी के ठोस मेंबर हैं. आज उनका नाम है, पैसा है, कार है, बंगला है, पुस्तकें हैं, रायल्टी है. आज वे पार्टी के पैसे से जनवादी पत्रिका निकालते हैं और जनवादी लेखकों की पाठशाला भी चलाते हैं. जिसका पहला सबक है नये लेखकों के लिए कि उन्हें इन पूंजीवादी पत्रिकाओं में नहीं छपना है. दूसरे वे लेखक-संपादक हैं, जिनका लेखन कभी दमदार था ही नहीं. वे शुरू से ही कलम के जरिए और अपनी आग उगलती जनवादी पत्रिका के माध्यम से क्रांति कर रहे हैं और रंगीन पत्रिकाओं में छपने वाले लेखकों को—पूंजीपतियों का भड़वा, दलाल बता रहे हैं. लेखिकाओं को बुर्जुवा लिफाफेबाज तथा डा. धर्मवीर भारती, कन्हैयालाल नंदन, मनोहरश्याम जोशी की आंखों में सुरमा लगाने वाली लेखिकाएं बता रहे हैं.

श्री प्रेम जनमेजय की इस बात से मैं सहमत हूं कि एक ईमानदार लेखक को किसी पार्टी का 'सिम्पेथाइजर' तो होना चाहिए, पार्टी का मेंबर कतई नहीं. वरना उसे हर कहानी का अंत पार्टी के मैनीफेस्टो के परिच्छेद फलां-फलां के मुताबिक ही रखना पड़ेगा, वरना कहानी बहक सकती है. दरअसल, इस तरह के मुखौटे भ्रष्ट मार्क्सवादी लेखकों ने ही लगा रखे हैं.

कितनी लघुपत्रिकाएं हैं, जो नये लेखकों को छापती हैं. वहां भी वही हिसाब है, तू भी संपादक, मैं भी संपादक, तू मुझे छाप, मैं तुझे छापूं. और कोई न छापे तो न सही.

▣ **विश्वरूप मोइत्रा, कानपुर**

ऐसा याद नहीं पड़ता

सारिका के 'एक नया नाम' में जगह पाने वाले नाम कहने को तो नये होते हैं, पर जैसी उम्दा चीजें वे दे जाते हैं, वह किसी पुराने की 'चीज' की बनिस्बत कुछ कम नहीं होती. पिछले दो अंकों में ऐसे दो पात्रों (ब्लैकर और हिजड़ा) पर युवा हस्ताक्षरों की कहानियां पढ़ने को मिलीं, जिस पर किसी स्थापित कलमकार ने कभी कलम चलायी हो, ऐसा याद नहीं पड़ता.

एक ओर जहां वेद प्रकाश की 'तीन का पांच' (अंक 268) का ब्लैकर 'छेदीं दा होते तो. . .' कहकर हमारे विचारों को मथकर एक आदमकद-सा सवाल खड़ा कर देता है, वहीं सुभाष अखिल ने कुदरत की बेरहमी का मिसाल, समाज के सबसे अधिक अपेक्षित और हास्यास्पद पात्र 'दरमियाना' (अंक 270) में मार्मिकता के साथ पेश कर बहुत सारी हमदर्दी हमसे उगलवा ली है.

▣ **मार्टिन जॉन 'अजनबी' मोजूडीह**

मानवीय मूल्यों के मसीहा : तीन

अभी पिछले हफ्ते मदुरै स्टेशन पर 'सारिका' के बारे में सहज पूछताछ करते हुए 'सारिका' के बजाय 'सारिका' का ऐसा पाठक मिल गया जो पेशे से राजनीति करता था लेकिन फुरसत के वक्त कुछ सोचता-पढ़ता भी था. उसे मेरी इस अवधारणा से सख्त ऐतराज था कि समय को कभी ठहराया जा सकता है, मुझे इस ऐतराज पर खुशी हो रही थी कि दूर-दराज के तमिलभाषी क्षेत्र में, और वह भी एक राजनीतिक नेता द्वारा, इतिहास के संघातों और समय की अप्रतिहत प्रवहमान गति के वैचारिक मुद्दों पर टिप्पणी की जा रही थी. राजनीतिक बंटवारों से भाषा और साहित्य के सवालों को तौलने वालों ने यह धुंध फैला रखी है कि तमिलनाडु में हिंदी का विरोध है. यहां बात विचित्र थी कि उसी तमिलनाडु का एक राजनीतिक नेता हिंदी की एक पाक्षिक पत्रिका में व्यक्त विचारों पर अपना मंतव्य दे रहा था. मेरी आंखों के आगे राजनीति झूठी पड़ रही थी, उसके पीछे का सत्य उभरकर सामने आ रहा था :"आप संपादक हैं, फिर भी आप समय के ठहरने की वकालत कर रहे हैं. यह प्रगति का नहीं, प्रगति के विरोध का द्योतक है. आप आग में कूदने वालों के प्रति आदर व्यक्त कर रहे हैं जबकि यह एक तरह से आत्मदाह को खुला आमंत्रण है. क्षमा करें, मैं इस आत्मदाह को स्वीकार नहीं कर पाया."

मैं वैचारिक मतभेद रखते हुए भी ऐसे प्रबुद्ध पाठकों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रिया-नज़रिया

अपना नमन देता हूं, जो सार्त्र की तरह समाधान से अधिक महत्त्व सवालों को देते हैं. सवालों की सर्जना समाधान की तलाश का पहला बिंदु होती है लेकिन मैं फिर विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि समय की अप्रतिहत, प्रवहमान धारा से जो कालखंड हम अपने लिए काटकर ठहरा लेते हैं वही हमारा इतिहास बनता है, वही हमारे लिए अर्थवान है, बाकी सिर्फ एक निरंतरता की खाना पूरी है. अभी पिछली यूरोप यात्रा के दौरान मैंने बुडापेस्ट कला संग्रहालय में उन्नीसवीं शती का एक ऐसा चित्र देखा था जिसमें हंगरी के एक राजनीतिक बंदी को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने के अपराध में सींखचों के पार दिखाया गया था. उससे मिलने के लिए उसकी बेटी आयी हुई है, जो अपने पिता को बंदी देखना सह नहीं पाती और फूट पड़ती है. अश्रुधारा रोकने के लिए उसने चेहरे को रूमाल से ढक लिया है जबकि बंदी का चेहरा सामने है और सामने से पड़ रहे प्रकाश में उसकी डबडबायी आंख से ढुलका हुआ एक आंसू का कतरा आंख की कोर से बाहर ठहर गया है. इसके चित्रकार हैं—बार्लित (1802-1868). मुझे याद है कि थोड़ी देर तो मैं उस आंसू में ठहरा हुआ दर्द बर्दाश्त कर पाया था, लेकिन फिर वह क्षण मेरे लिए बर्दाश्त से बाहर हो गया था. हंगेरियन इतिहास का वह क्षण जिसे उस उन्नीसवीं शती के चित्रकार ने अपने जेहन पर ठहराकर कैनवास पर उतार दिया था, अभी तक मेरे जेहन पर आकर ठहरा हुआ है. संवेदना की तरल सतहों पर समय का यही ठहर जाना तो है जो सदियों तक सोच की धारा को दिशा देता है, जिसे मैंने 'कौम की जरूरत के अनुरूप शक्ल देकर बहने को मजबूर करना' कहा था. कैसे मानूं कि समय का वह ठहरा हुआ हिस्सा प्रगति का विलोम बिंब देता है.

एक समय था, जब प्रगतिशीलता का दायरा काफी बड़ा था. जो भी लेखक लीक से हटकर सामाजिक उत्थान के प्रति निष्ठा व्यक्त करता था, उसे प्रगतिशील मानने में ऐतराज नहीं होता था. लेकिन धीरे-धीरे हम प्रगतिशीलता को सिर्फ अर्थतंत्र के घेरे में कैद करके छोटा करते चले गये और आज उसे एक निश्चित राजनीतिक विचारधारा का पर्याय बनाकर रख दिया गया है. हमें देखना यह है कि हमारी प्रगतिशीलता गति की जड़ता का पर्याय बनकर भी न रह जाये. जीवन को समग्रता में देखने की हमारी दृष्टि हमसे छिन न जाये. विवेक के सारे रास्ते उसी दृष्टि को पाने का उपक्रम हैं. और यह उपक्रम जारी रख सकना आज आसान नहीं रह गया. यह समाधान की तलाश का उपक्रम है और इस उपक्रम में चलना 'तलवार की धार पै धावनो' से भी ज्यादा खतरनाक आग के दरिया में कूदना है. जाहिर है कि आग के दरिया में कूदना और उससे जूझना, भले ही वह मजबूरी में हो, कोई आसान काम नहीं होता. यही होता है. धारा के बरखिलाफ लड़ना. समय उन्हीं अग्निपुत्रों को अपनी विरासत का हकदार मानता है जो उससे टक्कर लेते हैं. अपनी पहचान की तलाश के लिए समय से टकराने की इस प्रक्रिया को मैं 'आत्महंता योग' कैसे मान लूं, समझ नहीं पाता. अगर अंधकार से प्रकाश की जययात्रा का आलेख हमें सचमुच तैयार करना है तो इस प्रक्रिया से गुजरना ही होगा. वरना करते रहेंगे हम 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का जाप, मनाते रहेंगे 'ज्योति के पावन पर्व', अंधेरा टस से मस होने का नाम तक न लेगा.

ये पंक्तियां लिखते-लिखते भाई बालकवि बैरागी की भोपाल से भेजी दीवाली की शुभकामना मिली तो चौंक उठा. उन्हें बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने मेरी बात को एक आशंका में कवितामय वाणी दी. उनकी वही आशंका "आलोक वेला में बधाई के बावजूद" यहां आप सबको अर्पित कर रहा हूं :—

एक पीढ़ी बुझ रही है
एक पीढ़ी जल रही है,
एक पीढ़ी और है
जो गर्भ में ही पल रही है.
इन विसंगत पीढ़ियों को
कौन-सा परिवेश देंगे,
देश सौंपेंगे इन्हें हम
या कि बस उपदेश देंगे?
झिलमिलाती लौ
सनातन लौ भला
कब तक रहे,
क्रूर अंधियारे क्षितिज के
बोझ को कब त तक सहे.
तिलमिलाकर सहनशीला लौ
लपट यदि बन गयी,
तो न कहना यह दिवाली
हाय, कैसी मन गयी!

कन्हैयालाल नंदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार

"यह दुर्भाग्य ही है कि अपने देश में हिंदी को हिंदुओं के साथ, उर्दू को मुसलमानों के साथ और पंजाबी को सिक्खों के साथ जोड़कर देखने की आदत बन गयी है." हिंदी के प्रख्यात कथा-शिल्पी डा. महीप सिंह का यह कथन उनके रचनाकार के दर्द को तो व्यक्त करता ही है. आज जो भाषा और संप्रदाय के आधार पर हमारे समाज को विभक्त करने की कोशिश की जा रही है, उसके प्रति भी एक दृष्टि देता है. यहां दी जा रही हैं उनसे दो बातचीतें पहली बातचीत की है डा. हरदयाल ने और दूसरी कन्हैयालाल नंदन ने.

छाया: धर्मवीर

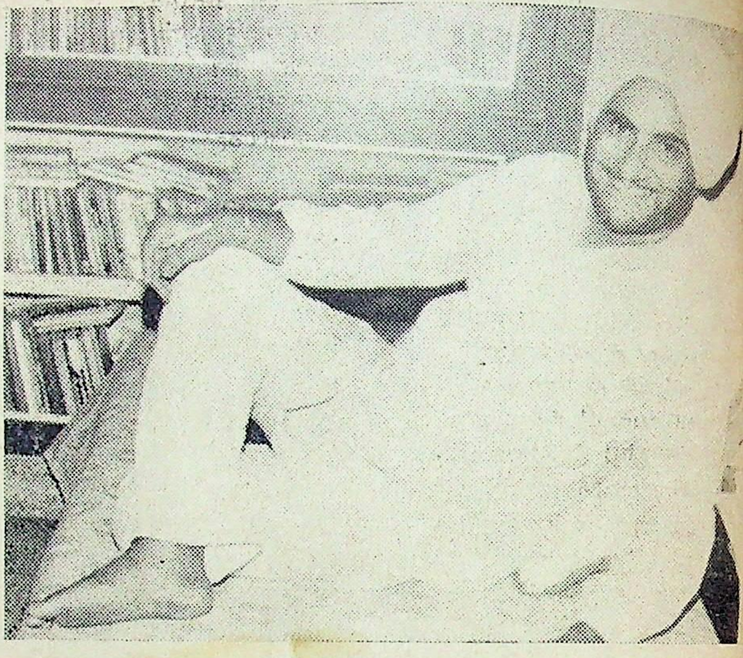

"आज के पाठक की रुचि बहुत प्रयोगधर्मा कहानी पढ़ने में नहीं है

▣ महीप सिंह

अकसर लेखक शिकायत करते हैं कि इस देश में लिखने के लिए अनुकूल परिस्थितियां नहीं हैं. आपको क्या ऐसा लगता है?

अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों का होना बहुत कुछ सापेक्षिक है. हमारा देश एक गरीब देश है, इसलिए यह बहुत स्वाभाविक है कि हमारे देश के अधिसंख्य लेखकों के पास वे सभी भौतिक सुविधाएं उस मात्रा में नहीं होतीं जिस मात्रा में किसी संपन्न देश के लेखक के पास होती हैं. जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष, लेखन के लिए न्यूनतम सुविधाओं का भी अभाव, लेखक के लिए सामाजिक सुरक्षा की कमी आदि ऐसी अनेक स्थितियां हैं जो लेखन-कार्य में बाधा उपस्थित करती हैं. कदाचित यही कारण है कि हमारे देश में औसत लेखक की लेखन-आयु अधिक नहीं होती—मुश्किल से दस वर्ष.

परंतु यह भी सच है कि लेखन-कार्य सदैव उपलब्ध परिस्थितियों के मध्य ही होता है. भौतिक स्थितियों के साथ ही मानसिक स्थितियां भी लेखन पर गहरा प्रभाव डालती हैं. जहां तक मेरा संबंध है, मुझे लेखन-कार्य के लिए आवश्यक (न्यूनतम) सुविधाएं उपलब्ध रही हैं.

आपकी गतिविधियां बहुत तरह की हैं. आप बहुत व्यस्त रहते हैं. इतनी व्यस्तता के बावजूद आप बराबर लिखते भी रहते हैं. यह व्यस्तता आपके लेखन में कहीं बाधा उपस्थित करती है?

बाधा उपस्थित नहीं करती, यह नहीं कहूंगा. ये सभी गतिविधियां काफी समय ले लेती हैं और समय तो सीमित होता है. परंतु एक बात मुझे अकसर महसूस हुई है. मुझे लगता है कि सिर्फ लिखकर ही मुझे पूरा संतोष नहीं मिलेगा. मेरे अंदर जो अतिरिक्त है (आप इसे अतिरिक्त ऊर्जा कह सकते हैं) उसे कुछ अतिरिक्त करना होगा. इस स्थिति का सबसे बड़ा संकट है कि यह अतिरिक्त कार्य कभी इतना अधिक बढ़ जाता है कि मूल पिछड़ने लगता है.

कभी अकेलेपन का अनुभव होता है?

किन्हीं क्षणों में हर व्यक्ति को अ[illegible] की तीव्र अनुभूति होती है. मेरा [illegible] सामाजिक है. परंतु इस सामाजिक [illegible] के कारण बने विविध संबंधों का खो[illegible] भी मेरे सामने बहुत साफ है. गर्म[illegible] मिलते हुए बहुत से हाथों और चेह[illegible] बिखरी हुई मोहक मुस्कराहटों [illegible] छिपी तुच्छता और कुटिलता भी नजर आती रहती है. परंतु कई संबंधों के झूठ को जानकर भी सं[illegible] कटकर जीना मुझे बहुत दूभर ल[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...र्भ में मुझे अपनी ही एक कहानी ...के उल्लू' याद आती है. संबंधों ...कर जीने और नितांत अकेलेपन ...गने का एहसास उस एक वर्ष में ज्यादा हुआ जब मैं जापान में रहा. ...मैं भाषा की दृष्टि से भी, और संपर्क संबंधों की दृष्टि से भी बिल्कुल कटा था. सचमुच अकेलापन क्या होता है, ...अनुभव मुझे पहली बार वहां हुआ. ...लिए एक-एक मिनट काटना वहां ...र बहुत कठिन हो जाता था.

उस जापान वाले अकेलेपन में क्या आप लिख सकते थे?

एक-दो महीने मुझे बहुत दिक्कत ...सारे अकेलेपन में अपने को समरस ...मैं. यहां तक कि वह सारा अकेलापन ...पर इतना हावी होने लगा कि मुझे ...कि मैं बीमार हो जाऊंगा, पर कुछ ...बाद मैंने उस अकेलेपन के साथ ...को समरस बनाया. अपना खाना ...बनाना शुरू किया. अपनी चाय खुद ...शुरू की और एकांत की जो गूंज ...गूंज के साथ एक संबंध पैदा करने ...कोशिश की, उस गूंज में जीने की ...की. और फिर लिखा मैंने अपना ...'यह भी नहीं' वहीं पर बैठकर.

नहीं, मेरे प्रश्न का एक दूसरा पक्ष है. जैसे हिंदी के अनेक लेखक विदेशों में रहने लगे हैं. वहां जाकर उनका लिखना धीरे-धीरे समाप्त हो गया है. आप जापान में जितने दिन रहे, वहां क्या आपने यह अनुभव किया कि यदि आपको जापान में लंबे समय तक रहना पड़े या स्थायी रूप से वहां रहना पड़े तो आप लेखन के साथ जुड़े रह सकते हैं या आपको वहां वह वातावरण मिल सकता है जिसमें लिखते रहना संभव हो सके?

...हो सकता. मुझे वहां रहकर लगा कि ...मैं वहां बहुत दिन रहूंगा तो लेखक ...में बहुत जिंदा नहीं रह सकूंगा. ...न्यास जापान में रहकर मैं इसलिए ...सका कि इस उपन्यास का पूरा ढांचा ...में पहले से ही तैयार था. मैंने सिर्फ ...रहने का उपयोग किया. मुझ यहो ...कि मैं विदेश में रहकर और चाहे ...भी बन जाता, लेखन के लिए मेरी जो मानसिक पृष्ठभूमि थी, धीरे-धीरे मेरे हाथों से निकल जाती और लेखक नहीं रह पाता. कम-से-कम मुझे लगा कि मैं नहीं रह सकता था.

इसका मतलब यह हुआ कि लेखक के लिए अपनी जमीन से जुड़े रहना बहुत आवश्यक है.

मुझे बहुत ज्यादा महसूस हुआ. यह और लोगों को महसूस होता है कि नहीं, लेकिन मुझे बहुत महसूस हुआ.

'सचेतन कहानी' का आंदोलन चलाने या उस तरह की एक धारणा विकसित करने का कारण क्या था?

दो बातें थीं. सबसे पहली बात तो यह थी कि उस समय की कहानी, जिसको 'नयी कहानी' के नाम से पुकारा जा रहा था कुछ व्यक्तियों तक केंद्रित होकर रह गयी थी और आप जानते हैं कि तीन व्यक्तियों के बारे में ही उस समय अधिकांश चर्चा हो रही थी. हमें लगा कि संपूर्ण कहानी बहुत व्यक्तिपरक चर्चा में सीमित हो गयी है. इसके पीछे प्रतिस्पर्द्धा थी. यह भी कह लें तो कोई बड़ी बात नहीं. दूसरी बात, कहानी के संबंध में जो वैचारिक पक्ष उपस्थित किया जा रहा था—सन् साठ के आसपास कहानी के संबंध में जो वैचारिक पक्ष प्रस्तुत किया जा रहा था, यदि उसका चित्र आपके सामने हो तो—उसमें से एक साथ कई स्वर उभर रहे थे. बाद में कुछ लोगों ने दावा किया कि 'नयी कहानी' भी प्रगतिशील दृष्टिकोण की कहानी थी. पर इससे मैं सहमत नहीं हूं. बहुत से लोग कहानी को 'अंधेरे में चीख' की संज्ञा दे रहे थे और खास तौर से अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ शब्द सारी कहानी-चर्चा में बहुत ज्यादा उभरकर आ गये थे. और उसमें थे—यह जीवन निष्क्रिय है, मनुष्य भविष्यहीनता के कगार पर आकर खड़ा हो गया है, मनुष्य का कोई भविष्य नहीं है, आज के वातावरण ने मनुष्य का इतना मोहभंग कर दिया है कि उसमें वह सिर्फ चीख सकता है, सिर्फ निरुपाय और अवश होकर जी सकता है इसके अलावा उसके सामने कोई उपाय नहीं है. ऐसी बहुत सारी चर्चा उस समय वातावरण में थी. हमने इस बात का उस समय विरोध किया था. हमने कहा था कि इस प्रकार की चर्चा जीवन को बहुत एकांगी समझने की चर्चा है. जीवन को मात्र जीना ही काफी नहीं है, उसे सक्रिय रूप से जानना भी बहुत आवश्यक है. जब 'आधार' का 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकला तो मैंने कहा कि जीवन सिर्फ जिया ही नहीं जाता, बल्कि उसे जाना भी जाता है. और जानने का बोध हममें वातावरण के प्रति एक सक्रिय चेतना जाग्रत करता है. हमने इस बात पर भी आग्रह किया कि जो कुछ हमारे सामने घटित हो रहा है, परिवर्तन हो रहा है, वह हमें जड़ स्थान पर लाकर खड़ा नहीं करता. बल्कि वह अनेक नयी संभावनाओं के द्वार हमारे सामने खोलता है. इसलिए जीवन को आप स्थिर होकर, जड़ होकर जी नहीं सकते. बल्कि आपको उन सारी जड़ स्थितियों में से अपने लिए एक मार्ग निकालना होगा. इसलिए हमें लगता है कि आज जो बाद में हिंदी कहानी के साथ सारी चर्चा जुड़ी—आम आदमी की चर्चा जुड़ी, जनवादी चर्चा जुड़ी, मैं मानता हूं कि एक समय की उस जड़ता को तोड़ने में 'सचेतन कहानी' ने अपना बहुत बड़ा योगदान दिया. आज हिंदी कहानी का जो स्वरूप है, यह वह स्वरूप नहीं है जो सन् साठ के प्रारंभिक वर्ष में हिंदी कहानी का हुआ करता था. मैं कहूंगा कि यह वह स्वरूप है जिसे कभी 'सचेतन कहानीकारों' ने बहुत आग्रह के साथ रखा था. बाद में सबने उसकी चर्चा की और अलग-अलग ढंग से उसकी चर्चा की. साहित्य में ऐसा होता ही है. इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है.

पिछले वर्षों में लिखी गयी कहानी में व्यावसायिकता की क्या भूमिका है?

मैं मानता हूं कि व्यावसायिकता की भूमिका सन साठ से लेकर सत्तर तक बहुत नहीं थी, लेकिन सत्तर से लेकर अस्सी तक यह भूमिका बहुत अधिक हो गयी. पहली बात, पहले कहानी की कुछ अच्छी पत्रिकाएं निकलती थीं. उनका प्रचार-प्रसार कितना है, यह महत्वपूर्ण नहीं होता था. उनमें कहानी छपना बड़े महत्व की बात मानी जाती थी. उदाहरण के लिए 'कहानी', 'नयी कहानियां', 'कल्पना' में कहानी छपना अपने आप में बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्वपूर्ण समझा जाता था. धीरे-धीरे ये पत्रिकाएं व्यापारिक दृष्टि से अपना महत्व खोने लगीं, क्योंकि धीरे-धीरे हिंदी पत्रिकाएं बड़े संस्थानों में जाकर केंद्रित होने लगीं और प्रचार-प्रसार उन पत्रिकाओं का बढ़ने लग गया, क्योंकि उनके पास व्यावसायिक तंत्र बहुत बड़ा है. स्वाभाविक है कि इन पत्रिकाओं का वितरण कम होने लग गया. इनके विज्ञापन कम होने लग गये. इनकी बिक्री कम होनी शुरू हो गयी और आर्थिक दृष्टि से धीरे-धीरे ये पत्रिकाएं लड़खड़ाने लग गयीं. जिन तीन पत्रिकाओं का जिक्र मैंने किया, आज ये तीनों ही बंद हो चुकी हैं. अब कहानी छपने के लिए रह गयी हैं कुछ बड़ी पत्रिकाएं, कुछ रंगीन पत्रिकाएं. इनका पहला उद्देश्य है कि इनकी पत्रिका बिकती कितनी है? स्वाभाविक है कि इनमें ऐसी कहानी छपेगी जिसको बहुत बड़ा पाठकवर्ग पढ़ सके. इसीलिए यह बात आकस्मिक नहीं है कि सत्तर के बाद हिंदी कहानी लेखन में महिलाओं की एक भीड़ तेजी से आयी है. आज हिंदी कहानी का एक खास किस्म का पाठकवर्ग है—घरों में रहने वाली महिलाएं या ऐसा पाठक जो गाड़ी में चलते हुए, सफर करते हुए कहानी पढ़ना चाहता है और एक ही पत्रिका में सब कुछ पा लेना चाहता है, उस पाठक की रुचि बहुत कलात्मक, प्रयोग-धर्मा कहानी पढ़ने में नहीं है. ऐसी कहानियां इन पत्रिकाओं को पुरुष लेखकों से कम मिलीं, परंतु घर-परिवार से जुड़ी हुई, घर और परिवार की संवेदना में डूबी हुई, कई बार, मैं उनको कहूंगा, रूमानी रंग में डूबी हुई कहानियां उन्हें महिला कथाकारों से अधिक मिलीं.

यह महिला लेखिकाओं का उभरना क्या सामाजिक परिवर्तन के कारण नहीं है?

सामाजिक परिवर्तन के संकेत तो जीवन के सभी क्षेत्रों में दिखाई दे रहे हैं. महिलाएं उन क्षेत्रों में भी आगे बढ़ रही हैं जिनमें कुछ वर्ष पूर्व तक उनका दखल नहीं के बराबर था. लेखन के क्षेत्र में भी उनका आना स्वाभाविक है, पर मुझे लगता है कि लेखन के क्षेत्र में महिलाएं जो इतनी अधिक आयी हैं, उसके पीछे दो बातें हैं. एक, कहानी को जितना सातवें दशक में अपठनीय बना दिया गया था, इन महिलाओं का एक बहुत बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने कहानी को दुबारा पठनीय बनाया. यह एक अलग बात है कि कहानी को पठनीय बनाने के दौरान इन्होंने कहानी को बहुत रोमानी बनाया और कई बार कहानी को उस स्तर पर वापस ले गयीं जहां से कहानी को मुश्किल से खींचकर बाहर लाया गया था. मुझे लगता है कि इसके पीछे बहुत बड़ी व्यावसायिक मांग है. इस प्रकार की कहानियां आज का मध्य-वर्गीय हिंदी पाठक (विशेष रूप से पाठिकाएं) पढ़ना पसंद करता है. उनकी जिंदगी की रोमानी झलक इन कहानियों में दिखाई देती है.

इतने अरसे से कहानियां लिखते रहने के बावजूद उपन्यास अभी तक आपने एक ही लिखा है 'यह भी नहीं.' ऐसा क्यों?

बहुत समय तक जो कथाबिंदु मेरे मन में उभरता था, वह मुझे सदैव कहानी के लिए ही उपयुक्त लगता था. फिर जब उपन्यास की दृष्टि से एक व्यापक कथाफलक मेरी कल्पना में आया तो अनेक व्यस्तताओं के कारण मैं उसे जल्दी नहीं लिख सका. उपन्यास-लेखन के लिए लेखक को एक विशेष प्रकार की फुर्सत चाहिए. समया-भाव के कारण वह मुझे बहुत नहीं मिल सकी. अपने एक वर्ष के जापान प्रवास में यह फुर्सत मुझे मिली और मैं बहुत दिन से सोचे हुए उस उपन्यास को लिख सका.

आपके उपन्यास में एक प्रकार का बिखराव-सा है. इसका क्या कारण है?

मैंने बंबई नगर के उस विशेष वर्ग को अपने उपन्यास में चित्रित किया है जो देश के अन्य भागों से जाकर वहां बसा है. सही अर्थों में बंबई भारत का एकमात्र कास्मोपॉलिटन नगर है, जिसका हर व्यक्ति देश के किसी अन्य भाग से उखड़कर वहां आया है. ऐसा व्यक्ति एक ओर अपने परंपरागत संस्कारों से बंधा रहता है, दूसरी ओर उस महानगर की बाध्यताएं उसे घेरती रहती हैं. इसलिए वहां के जीवन में अनिश्चय, बिखराव, संदेह और असुरक्षा मानो आवश्यक तत्व ही गये हैं. मैंने अपने उपन्यास में बंबई के मध्यवर्गीय जीवन को उसकी समग्रता में पकड़ने की कोशिश की है. इसलिए उसमें बिखराव ही नहीं बल्कि अनिश्चय, संदेह और असुरक्षा का भाव भी शायद दिखाई देगा. उपन्यास का हर पात्र अपने भविष्य के संदर्भ में अनिश्चित स्थिति में जीता है और असुरक्षा को दूर करने के बड़े कमजोर सहारों को ढूंढ़ता फिरता है.

अंत में मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूंगा. सामान्यतः माना जाता है कि हिंदी हिंदुओं की भाषा है. आप सिक्ख हैं. क्या आपको हिंदी को अपने सृजन का माध्यम बनाने में किसी प्रकार की असुविधा हुई है?

अपने सिक्ख होने की असुविधा या कहूं कि संकट को मैं पिछले पचीस वर्ष से लगातार झेल रहा हूं. मैं मानता हूं कि भाषा का संबंध धर्म या संप्रदाय के साथ न होकर भूमि के साथ होता है. यह दुर्भाग्य ही है कि अपने देश में हिंदी को हिंदुओं के साथ उर्दू को मुसलमानों के साथ और पंजाबी को सिक्खों के साथ जोड़कर देखने की आदत बन गयी है. मैं समझता हूं कि हिंदी को हिंदुओं की भाषा कहना हिंदी के साथ भयंकर अन्याय करना है. इस बात को मैं अनेक स्थानों पर आग्रहपूर्वक कह चुका हूं कि यदि हिंदी को इस समूचे देश की भाषा बनना है तो सबसे पहले उसे हिंदुओं से मुक्त होना होगा. जब मैंने सन् 195[illegible] में एम. ए., हिंदी की कक्षा में प्रवेश लिया था और आज जब मुझे हिंदी का अध्यापन करते और हिंदी में लिखते पचीस-तीस वर्ष हो चुके हैं, पता नहीं क्यों, अभी भी लोग यह नहीं भूल पाते कि मैं सिक्ख हूं. जैसे वे यह स्वीकार नहीं कर पाते कि मेरा हिंदी का अध्यापक होना या हिंदी का लेखक होना उतना ही सहज हो सकता है जितना उस व्यक्ति का जिसने हिंदू-परिवार में जन्म लिया है. और अब तो हिंदी में मुसलमान और ईसाई लेखक भी बड़ी मात्रा में आ गये हैं. फिर भी, इतनी लंबी यात्रा कर लेने के बाद भी पता नहीं क्यों लोग मुझे बार-बार याद दिलाते हैं कि मैं सिक्ख हूं. व्यक्ति को व्यक्ति के संदर्भ में न देखकर सदैव उसे किसी समुदाय के संदर्भ में देखा या परखा जाना, यातना और खीझ से भरा हुआ होता है. इसका अनुमान मेरे जैसे लोग ही लगा सकते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सांप्रदायिकता से जुड़ना ही होता तो मैं अकाली न बन जाता!"

महीप सिंह

मैं आपकी इस बात से सहमत हूं कि कोई भी भाषा किसी संप्रदाय से जुड़ी हुई नहीं होती और भाषा विशेष को संप्रदाय विशेष के साथ जोड़ना गलत है, परंतु आपका सिक्ख होना हिंदी साहित्य को ऐसी कहानियां भी दे सकता था, जिन्हें संप्रदाय विशेष को समझने में किसी अन्य संप्रदाय के व्यक्ति को कुछ दिक्कत हो. इस विषय में आप क्या सोचते हैं?

देश में जब नवजागरण का आंदोलन ...तब अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की ...न के लिए हम लोगों ने जहां देश, धर्म, ...ओं और संस्कृति का नाम लिया, भाषा का भी नाम लिया. 'सब मिल ...एक जवान——हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान' उदघोष इसी नवजागरणवादी ...कता की उपज था, जिसका मुखर ...हमें 19वीं शताब्दी के अंत में सुनाई ...गया था. इसी तरह उर्दू के लिए ...मानों का, पंजाबी के लिए सिक्खों का आग्रह बना, जो किसी हद तक आज ...बना हुआ है. भाषाओं के पीछे धर्म संप्रदाय के जुड़ने की धारणा ...भी लेखकों, बुद्धिजीवियों और जाग... व्यक्तियों को विरोध करना चाहिए. ...सिक्ख परिवेश पर कुछ कहानियां ...हैं. इनमें से 'उलझन' को साप्ताहिक ...न द्वारा आयोजित 'प्रेमचंद कहानी ...योगिता' में 1956 में प्रथम पुरस्कार ...था. 'पानी और पुल' जैसी कहानियां ...भी बहुत चर्चित हैं. बलवंत सिंह, ...र, गुरुबचन सिंह आदि अनेक सिक्ख ...होंने सिक्ख परिवेश से जुड़ी हुई अच्छी ...यां हिंदी जगत को दी हैं. जब भी ...अछूते परिवेश के व्यक्ति हिंदी में लिखेंगे तो स्वाभाविक है कि उनके परिवेश की झलक उन रचनाओं में दिखाई देगी. मुस्लिम परिवेश की कितनी अच्छी कहानियां हिंदी में लिखी गयी हैं. परंतु हिंदी में लिखने वाले किसी सिक्ख, मुसलमान या ईसाई लेखक को जब यह बार-बार याद कराया जाता है कि तुम सिक्ख, मुसलमान या ईसाई हो तो उसको यह एहसास होता है कि जैसे वह कोई बाहर का व्यक्ति है और अनपेक्षित रूप से हिंदी में घुस आया है. यह बाहर का व्यक्ति होने का एहसास दूर होना चाहिए.

आपकी बात ठीक है. जब यह याद कराया जाता है तो इससे मन में प्रतिक्रिया पैदा होती है. आप यह मानते होंगे कि पिछले 30—35 वर्षों में इस देश में सांप्रदायिकता बढ़ी है, जिसे बिलकुल समाप्त हो जाना चाहिए था——लगातार सांप्रदायिक दंगे भड़कते रहे हैं. हमारे सामाजिक जीवन की इन स्थितियों के प्रति रचनाकार क्यों उपेक्षा बरतता है?

सांप्रदायिक प्रश्नों पर हिंदी में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक अच्छी कहानियां लिखी गयी हैं. अधिकांश लेखकों ने जब कभी इन समस्याओं पर लिखा तो उनकी 'एप्रोच' सदा असांप्रदायिक रही है और समस्त मानवीय मूल्यों को उन्होंने संप्रदायगत संकीर्णता से ऊंचा रखा है. विभाजन के संदर्भ में लिखी हुई कुछ कहानियां, जो विभाजन के समय लिखी गयीं और लगातार बाद तक लिखी जाती रहीं, आज भी लोगों को स्पंदित करती हैं. इसलिए मैं नहीं मानता हूं कि हमारा लेखक आज के सामाजिक प्रश्नों से जुड़ा हुआ नहीं है या उसके प्रति गहरा सरोकार अनुभव नहीं करता है, परंतु राजनीति ने सभी प्रश्नों को इतना उलझा दिया है और उनके स्वरूप को इतना विकृत कर दिया है कि उसके मध्य से सही दृष्टिकोण को उभार सकना आसान नहीं है.

इन स्थितियों के लिए आप राजनीति को बहुत अधिक उत्तरदायी मानते हैं?

आज तो अनेक सामाजिक प्रश्नों पर विचार करना इसलिए पाखंड लगता है कि राजनीति ने उसके सारे अर्थ को ही विकृत कर दिया है. सभी लोग कहते हैं, रिश्वत बहुत बुरी है परंतु इसी रिश्वत और भ्रष्टाचार के खुले उदाहरण हमें अनेक मंत्रियों और उच्च पदों पर बैठे हुए लोगों के संदर्भ में नजर आ जाते हैं. संसद और विधानपरिषदों के सदस्य कुछ लाख रुपये इकट्ठा करने के लिए जिस ढंग से दलबदल करते हुए दिखाई देते हैं, उससे रिश्वत लेने-देने का सारा संदर्भ भी बहुत बदला हुआ-सा दिखाई देता है. इसी संदर्भ में दूसरा उदाहरण अनुशासनहीनता का है. प्रायः कहा जाता है कि हमारा आज का युवक, विद्यार्थी वर्ग बहुत अनुशासनहीन हो गया है. एक अध्यापक होने के नाते मैं यह बात कुछ अधिकार से भी कह सकता हूं कि इस वर्ग में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के लिए भी बहुत दूर तक हमारा राजनीतिक वातावरण उत्तरदायी है. संसद तथा देश के विभिन्न राज्यों की विधान परिषदों में जनता के चुने हुए

महीप सिंह : 1952 में

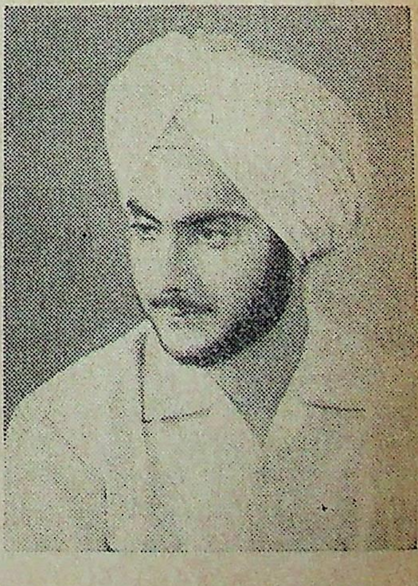

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि प्राय: जिस तरह की अनुशासन-हीनता का परिचय देते हैं, उसके बाद विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता पर कुछ भी कहना हास्यास्पद लगता है. हमारे सामाजिक जीवन की इन पाखंडपूर्ण स्थितियों पर यदि लेखक लिखता है तो मैं मानता हूं कि वह इन प्रश्नों के प्रति जागरूक है.

हमारी वर्तमान राजनीति बहुत भ्रष्ट हो गयी है और सभी चीजों का राजनीतिकीकरण हो रहा है. मानवीय संबंधों से लेकर जिंदगी की मूलभूत आवश्यकताओं तक राज-नीति बोलती हुई दिखाई देती है, इससे बचने का कोई उपाय है?

मैं समझता हूं कि प्रत्येक लेखक और सभी बुद्धिजीवियों को सबसे पहले यह निश्चय तो करना ही चाहिए कि उन्हें जो भी अन्यायपूर्ण स्थिति दिखाई दे, उसका वे निर्भीक होकर विरोध कर सकें. इस दृष्टि से लेखकों और बुद्धिजीवियों के बहुत सशक्त मंच बनने चाहिए. जिन मंचों से वे इन सारे पाखंडों का विरोध कर सकें और एक समानांतर दबाव की शक्ति का निर्माण कर सकें. लेखक स्वयं राजनीति में प्रवेश करके कोई सार्थक परिवर्तन कर सकेंगे, इसमें मुझे संदेह है, परंतु यदि लेखकों, बुद्धिजीवियों के सशक्त और प्रभावशाली मंच हैं तो राजनीति या अन्य व्यावसायिक तंत्रों पर कारगर दबाव डाला जा सकता है.

आपने भी तो इस तरह लेखकों का एक मंच बनाने में सक्रिय भूमिका अदा की थी. मैं आपके अनुभव के आधार पर यह जानना चाहता हूं कि इस मंच या संगठन को एक प्रभावी 'प्रेशरफोर्स' बनाने में कहां तक सफलता मिली?

भारतीय लेखक संगठन की स्थापना की पृष्ठभूमि में हमारी यही इच्छा थी कि यह मंच राजनीतिक विचारों से ऊपर उठकर एक ऐसा मंच बने, जो सीधे-सीधे लेखकों के प्रश्नों से जुड़े और लेखक वर्ग एक सार्थक सामाजिक शक्ति के रूप में उभर सके. साथ ही वह लेखकों के हितों के लिए भी लड़ सके, पर हमारे इस कार्य के लिए चारों ओर से हम पर बहुत से 'मोटिव्स' आरोपित किये गये और यह कहा गया कि इसके पीछे निहित स्वार्थ जुड़े हुए हैं. जब कभी कोई ऐसा प्रयास अधिक सफल नहीं हो पाता तो उसके पीछे मुख्य कारण यही दिखाई देता है कि लेखक अपनी क्षुद्र सीमाओं से उभर नहीं पाता. यह ठीक है कि यह प्रयत्न अभी बहुत अधिक सफल हुआ नहीं दिखाई देता है, पर मैं मानता हूं कि ऐसा प्रयत्न होना चाहिए.

आप अध्यापक हैं, क्या आप महसूस करते हैं कि अध्यापक होना आपकी रचनाधर्मिता में कहीं आड़े आता है?

नहीं. अध्यापक होना मैंने इसीलिए स्वीकार किया कि मैं अपनी रचनाधर्मिता से जुड़ा रह सकूं, परंतु अध्यापक की कुछ सीमाएं होती हैं. वर्षों तक विद्यार्थियों को विद्यार्थी स्तर से पढ़ाने के बाद उसकी सारी सोच-समझ, व्याख्या में एक खास किस्म की अध्यापकीय वृत्ति आ जाती है, जो अपने आप में एक बहुत बड़ी सीमा है. एक जागरूक लेखक या आलोचक के लिए इस सीमा से उबरना बहुत आवश्यक है.

इसमें मैं थोड़ी-सी असहमति व्यक्त करना चाहता हूं, जो अध्यापक अद्यतन साहित्य से जुड़ा होता है, उसके पढ़ाने में भी वह ध्वनित होता है और जरूरी नहीं कि जिस तथाकथित अध्यापकीय वृत्ति का आप जिक्र कर रहे हैं, उसका वह शिकार हो जाये.

मैं आपकी बात से सहमत हूं. मैंने जो कुछ कहा, यह उसका विरोध नहीं, बल्कि पुष्टि है. मैं मानता हूं कि अध्यापक को अद्यतन साहित्य से जुड़ा रहना चाहिए, परंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि अधिकांश अध्यापक, साहित्य में नया जो कुछ भी लिखा जा रहा है, उसके प्रति बहुत जागरूक नहीं होते और उनके अध्ययन और अध्या-पन की सीमा पाठ्यक्रम में निर्धारित साहित्य बन जाता है. ऐसे लोग जब मध्य-युगीन या आधुनिक साहित्य के संदर्भ में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं तो उसमें कक्षा में दिये गये व्याख्यान की झलक स्पष्ट दिखाई देती है. मैं अपने आपको इससे बचाए रखना चाहता हूं. मैं अपने विद्यार्थियों के साथ उस स्तर पर संवाद करना पसंद करता हूं, जिस स्तर पर अपने साहित्यिक मित्रों के साथ.

> जिसके हाथ में थोड़ा-सा भी अधिकार है, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होने के रूप में, किसी पत्रिका का संपादक होने के रूप में, पुरस्कार देने वाली संस्थाओं में अपनी पहुंच के रूप में—वह अपने अधिकार का समय-असमय पूरा उपयोग करता है.

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि आज का विद्यार्थी सामाजिक या साहि-त्यिक दृष्टि से उतना जागरूक न[ही] होता कि अध्यापक विशिष्ट स्[तर] पर उनसे बात कर सके.

मैं इससे सहमत नहीं हूं. यह सदैव हो[ता] रहा है कि यदि किसी कक्षा में 50-6[0] विद्यार्थी हैं तो उनमें जागरूक विद्यार्थि[यों] की संख्या 5–10 के आसपास ही हो[ती] है. आज भी स्थिति लगभग यही है.

विद्यार्थियों पर सबसे अधि[क] अनुशासनहीन होने का आरो[प] लगा दिया जाता है. एक लंबे अर[से] से अध्यापक होने के नाते आप [इस] विषय में क्या महसूस करते हैं?

मैं मानता हूं कि अनुशासनहीनता [का] बहुत गहरा संबंध लक्ष्यहीनता से है. यदि उसके सामने विद्यार्जन करने के बाद रोजगार की संभावनाएं पूरी तरह खुली हों तो लक्ष्य निर्धारित करने में कोई कठि-नाई नहीं होगी. दुर्भाग्य की बात यह है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी अधिकांश विद्यार्थियों को हम लक्ष्य की कोई स्पष्ट परिकल्पना नहीं दे सके. इसके साथ ही हमारे देश का हर राजनीतिक दल विद्यार्थियों का पूरा लाभ उठाने और उन्हें अपना मोहरा बनाने में लगा रहता है. राजनीति में अपनाये जाने वाले सभी हथकंडे, जो कि गिरावट की सीमा तक पहुंच चुके हैं, जिससे आप-हम सभी परिचित हैं, यदि वे सभी हथकंडे राजनीतिक दलों द्वारा विद्यार्थियों के मध्य ले जाये जायेंगे तो बाद में विद्यार्थियों से किस प्रकार के अच्छे चरित्र और अनुशासन की उम्मीद करेंगे?

हमारा जीवन जितना बहुआयामी हो चुका है, क्या उसे समग्रता में...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़ सकने वाली कहानियां आ रही हैं? मेरा मत यह है हमारा लेखन उतना बहुआयामी नहीं हो रहा है, जितना हमारा जीवन हुआ है, आप इस बात को मानते हैं क्या?

ना के क्षेत्र में नये आयामों या नयी स्थिति का उद्घाटन करना तभी संभव है, जब उसके लिए समुचित माध्यम

इस प्रसंग में लघु पत्रिकाओं की सार्थकता हमारे सामने उभरती है, क्योंकि माध्यम व्यावसायिक पत्रिकाएं नहीं लघु पत्रिकाएं ही बनती हैं. जिस की व्यवस्था में हम जी रहे हैं, उसमें की कसौटी भी उसकी व्यावसायिकता के साथ जुड़ जाती है, पर कोई भी धर्मी रचना या किसी भी अनउद्घाटित परिवेश पर लिखी गयी कहानी एक किस्म के धीरज की मांग करती है व्यावसायिक युग में यह धीरज लेखकों में नहीं होता. जब आप कहते हैं कि नये-नये संदर्भों और नये क्षेत्रों को उद्घाटित करने वाली कहानियां हिंदी में नहीं आ रही हैं तो मैं कहूंगा आ रही हैं, पर उस मात्रा में नहीं आ जिस मात्रा में उन्हें आना चाहिए इसके पीछे मैं यह मानता हूं कि व्यावसायिक दबाव बहुत तेज है.

या लेखकीय दृष्टि में विस्तार की कमी भी कहीं सीमाएं खींचती है?

व्यावसायिक दौर में व्यक्ति के अंदर धीरज ता और लेखकीय दृष्टि के विस्तार धीरज की बहुत जरूरत पड़ती है.

हमारा लेखक वर्ग असहिष्णुता का भयंकर शिकार है और वह अपनी आलोचना भी नहीं सुन सकता, ऐसा क्यों?

ऐसा क्यों मानते हैं कि ऐसे लेखक हैं? लेखकों से मेरा गहरा संबंध मानते हैं कि मैं लेखकों के बीच जीता अपना मत यह है, कुछ लेखक चाहे आलोचना के प्रति असहिष्णु हों, अन्य लेखक और खास करके हमारे की जो युवा पीढ़ी है, वह अपनी ना के प्रति इतनी असहिष्णु नहीं मानता हूं कि जिस असहिष्णुता की कर रहे हैं, यह शायद उन लेखकों के मध्य ज्यादा है, जो लेखक कम और मठाधीश ज्यादा हो गये हैं.

आपने मठाधीशों की बात कही, मुझे लगता है कि आज कहीं ज्यादा छोटे-छोटे मठ बनते चले जा रहे हैं. कुछ वर्ष पहले तक प्रगतिशील लेखकों का एक मठ होता था और दूसरे वे होते थे, जो उनके साथ जुड़े हुए नहीं होते थे. अब तो प्रगतिशीलों के भी अलग-अलग मठ हो गये हैं और दूसरे लोगों के भी. आज ये व्यक्तिपरक मठ जो बनते चले जा रहे हैं, वे रचनाधर्मिता के लिए कहां तक सहायक सिद्ध होंगे?

मैं यह कहूंगा कि आज लेखकों के मध्य वैचारिक मतभेद बहुत अधिक नहीं हैं. अधिकांश लेखक अपने आपको सामाजिक संदर्भों और सरोकार से जुड़ा हुआ लेखक मानते हैं और उसका दावा करते हैं. हर लेखक यह मानता है कि व्यक्ति अपनी निजी जिंदगी, अंदर की जिंदगी में जीकर जो प्राप्त करता है, वही पर्याप्ति नहीं होता, कहीं-कहीं वृहत्तर सामाजिक जीवन से उसका लगाव और जुड़ाव होता है और सामाजिक परिवर्तन की जो प्रक्रिया अपने देश में प्रारंभ हुई है, अधिसंख्य लेखक इसका स्वागत और समर्थन करते हैं और अपने आपको जुड़ा हुआ महसूस करते हैं. जहां तक प्रगतिशीलों का सवाल है, इस देश की वामपंथी राजनीति स्वयं अनेक प्रकार के मतभेदों से भरी हुई है. एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी और अब चौथी कम्युनिस्ट पार्टी इस देश में बन गयी है. अपने आपको प्रगतिशील समझने वाले लोग यदि लगातार अपने आपको वामपंथी राजनीति से जोड़े रहेंगे तो जितने मतभेद राजनीति में उभरेंगे, उतने मतभेद इनके मध्य भी उभरेंगे. आपने व्यक्तिपरक मठों की चर्चा की, मैं कहूंगा कि इस प्रकार के गुटों और मठों का जैसा गर्हित स्वरूप आज दिखाई दे रहा है, वैसा शायद पहले कभी नहीं था.

जिसके हाथ में थोड़ा-सा भी अधिकार है, विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होने के रूप में, किसी पत्रिका के संपादक होने के रूप में, सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं की कमेटियों की सदस्यता के रूप में, पुरस्कार देने वाली संस्थाओं में अपनी पहुंच के रूप में, वह अपने इस अधिकार का समय-असमय पूरा उपयोग करता है.

आपने पंजाबी में लेखकों का एक सहकारी प्रकाशन प्रारंभ किया. जहां तक मेरी जानकारी है, इस सहकारी प्रकाशन को बहुत सफलता मिली है, केरल के बाद, शायद यह दूसरा सहकारी प्रकाशन है, जो इतना सफल है. इसके बारे में आपके क्या अनुभव हैं और ऐसा हिंदी में क्यों नहीं हो सकता?

नंदनजी, पंजाबी में जो सहकारी प्रकाशन आज है, उसे मैंने शुरू नहीं किया. पंजाबी राइटर्स कोऑपरेटिव सोसायटी को बने आज इक्कीस वर्ष हो चुके हैं. पिछले तीन-चार वर्ष से मैं इसके साथ संबद्ध हूं. तीन वर्ष तक इसका अध्यक्ष रहा हूं. इस संस्था को सक्रिय बनाने में जरूर मैंने अपना कुछ योगदान दिया है. गत-तीन-चार वर्षों में इस संस्थान की ओर से 35–40 पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं. व्यावसायिक दृष्टि से भी यह प्रयोग सफल रहा है.

इस दृष्टि से हिंदी में भी कुछ प्रयत्न हुए थे. नरेंद्र शर्मा ने भी एक कोशिश की थी, किंतु यह बात हिंदी में अभी तक पनप नहीं सकी. क्या यह हिंदी वालों का कोई मानसिक गुण है जो इसे पनपने नहीं देता या इसके पीछे कोई व्यावसायिक टकराहट भी है?

दोनों कारण हैं. मैं यह मानता हूं कि ऐसे प्रकाशन की हिंदी में बहुत आवश्यकता है. संयोग से हिंदी का संपूर्ण प्रकाशन व्यवसाय आज दिल्ली में केंद्रित हो गया है. जम्मू, चंडीगढ़, जयपुर, भोपाल, पटना, कलकत्ता, बंबई या हैदराबाद जैसे केंद्रों पर ऐसे सहकारी प्रकाशन हों तो उन क्षेत्रों के लेखकों को अपनी रचनाओं को प्रकाशित कराने के लिए दिल्ली नहीं भागना पड़ेगा. हिंदी का लेखक कश्मीर से केरल तक और गुजरात से असम तक बसता है और वहां के लेखकों को अपनी पुस्तकें प्रकाशित कराने के लिए कितना संकट झेलना पड़ता है, इसकी दिल्ली में बैठकर कल्पना भी नहीं की जा सकती. हिंदी में ऐसा सहकारी प्रकाशन क्यों नहीं बन पा रहा है, इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

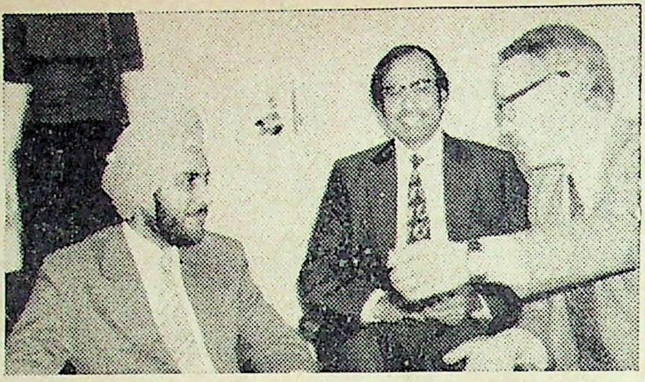

कान्साई विदेश अध्ययन विश्वविद्यालय (जापान) में डॉ रमेश माथुर और प्रो. लिडिन के साथ

कारणों का विश्लेषण करना इसलिए मुश्किल है, क्योंकि जहां तक मैं समझता हूं, हिंदी में इस ढंग का अभी तक कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं हुआ है. मैं मानता हूं कि यदि हिंदी में एक सुनियोजित प्रयास हो और पांच-दस-पंद्रह लेखक जो सचमुच एक-दूसरे पर विश्वास कर सकें, एक दूसरे के निकट हों और एक अच्छी समझ एक-दूसरे के प्रति जिनके अंदर हो. . .

आपने तो पांच-दस-पंद्रह बता दिये! भाई जान, एक-दो तक रखो शायद ठीक हो जाये.

सहयोगी प्रकाशन एक-दो से शुरू नहीं होता. कम से कम उसमें पंद्रह-बीस लेखक होने चाहिए.

पंजाबी में सहकारी प्रकाशन की दृष्टि से आपने प्रक्रिया क्या अपनायी, उसका आर्थिक पहलू कैसे हल किया.

इस देश में कोई भी कोऑपरेटिव सोसायटी ऐसी नहीं है, जो सरकरी कर्ज की सहायता के बिना चलती हो. आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पंजाबी राइटर्स कोऑपरेटिव सोसायटी ने कोई सरकारी ऋण नहीं लिया. दो वर्ष पूर्व एक बैंक ने हमें दस हजार रुपये के ओवरड्राफ्ट की सुविधा दी और गत वर्ष पंजाब सरकार ने हमें दस हजार रुपये का एक अनुदान दिया. विशेष काम लेखकों ने खुद किया और उसके लिए एक पूरी प्रक्रिया विकसित की. कितना पैसा लेखक लगायेगा, कितना सोसायटी लगायेगी. लेखक को अपना धन कैसे और कितनी अवधि में वापस मिलेगा, रायल्टी कितनी मिलेगी—ये सभी बातें लेखकों ने आपस में मिल बैठकर तय की हैं. और यह सब कुछ बड़े ठीक ठंग से चल रहा है.

हिंदी में भी ऐसा हो सकता है?

क्यों नहीं हो सकता. कुछ लेखक मिलकर ऐसा प्रयत्न शुरू करें तो हो सकता है, पर फिर सवाल वही पैदा होता है—कुछ लेखक मिलकर शुरू करें. . .पर लेखक मिलें कैसे?

बहुत बड़ा सवाल है, परंतु यदि ऐसा हो जाये तो बहुत अच्छा हो. खैर, चूंकि आप प्रकाशन व्यवसाय से थोड़ा-बहुत जुड़े हुए हैं—हिंदी में आज पुस्तकों की बिक्री की जो स्थिति है, उसके बारे में आपकी क्या राय है?

आज हिंदी में पुस्तकों की बिक्री की जो स्थिति है, वह बहुत स्वस्थ और संतोषजनक नहीं दिखाई देती. छोटे-बड़े सभी प्रकाशकों की नजर सरकारों द्वारा की जाने वाली 'बल्क परचेज' पर टिकी रहती है. मैं मानता हूं कि पुस्तकों की बिक्री में सरकारों को मदद करनी चाहिए. लोगों के बौद्धिक विकास का दायित्व किसी भी सरकार पर उतना ही है, जितना उनके रोजगार, आवास और सुरक्षा का है, परंतु इसी नीति में से खतरे भी उभरते हैं. मध्य प्रदेश सरकार की पुस्तक-खरीद नीति की मैंने कड़ी आलोचना की है. सरकारों की खरीद नीति इस तरह की नहीं होनी चाहिए कि लेखकों/प्रकाशकों को यह महसूस कराया जाये कि तुम्हें खरीदा जा रहा है, तुम्हें उपकृत किया जा रहा है. इस नीति से लेखकों में राज्याश्रित होने के भाव को बढ़ावा मिलता है. यह अच्छी बात नहीं है. इसका विरोध होना चाहिए. दूसरी ओर हिंदी में पुस्तकें खरीदकर पढ़ने वाला पाठक वर्ग बढ़े, इसका प्रयास होना चाहिए. कुछ प्रकाशकों ने अच्छी साहित्यिक पुस्तकों के सस्ते संस्करण और जेबी संस्करण छापने का कार्यक्रम शुरू किया है, ... लाभ हो रहा है. यह स्वागत योग्य है ... सरकारी तंत्रों द्वारा जो पुस्तकों की ... हो रही है, उस पर लेखकों, प्रकाशकों ... बड़ी जागरूक दृष्टि होनी चाहिए. उस ... में यदि उन्हें कहीं भी भ्रष्ट स्थिति ... पनपने की संभावना दिखाई दे तो ... त्कालिक लाभ या हानि की चिंता ... बगैर उन्हें उनका विरोध करना चाहि...

आपने कभी कविताएं लिखीं ...

नहीं, नहीं लिखी.

कभी आपको ऐसा कुछ लगा ... कि कहानी लिखने के बाद ... ऐसा बिंदु भी है, जो उसमें न... पा रहा है?

ऐसा लगता है. कभी-कभी लगता है ... बहुत सारी बातें जो मैं कहानी के मा... से नहीं कह पा रहा हूं, उसके लिए मुझे ... दूसरा माध्यम चाहिए. अपना ... (यह भी नहीं) लिखते समय एक ... ऐसा आया, जब एक बात को प्रतीक... ढंग से व्यक्त करने के लिए मुझे कवि... सहारा लेना पड़ा, उस स्थिति में मैंने ... कविता लिखी.

जिंदगी के नाजुक पहलू, ... पहलू आज की जिंदगी में से ... जा रहे हैं. कारण आज का ... दबाव भी हो सकता है और ... नीतिक नारेबाजी भी. प्रकृ... देखने का नजरिया भी खोता ... रहा है—चाहे वह कहानी ... कविता हो, नाटक हो. एक ... कार के नाते आप नहीं ... करते?

मुझे यह महसूस होता है. मैं इसे संयोग ... अपना दुर्भाग्य कहूंगा कि प्रकृति के ... वातावरण में मैं पला नहीं. हमेशा मैं ... नगरों का जीवन जीता रहा. उसमें ... का संस्पर्श कभी-कभी महसूस हुआ ... हवा का कोई ठंडा झोंका छूकर निक... हो. प्रकृति का पूरा आस्वाद क्या है ... यह मैंने कभी गहराई तक अनुभ... किया. मैं समझता हूं कि महानगरों ... लेने और पलने वाली पीढ़ी की शायद ... नियति हो. हम अपने बच्चों से ही ... देखें कि क्या उन्होंने सूर्योदय देखा ... सूर्यास्त कैसा होता है, इसे वे जा... बड़ी-बड़ी अट्टलिकाओं के पीछे ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे लगता है कि वह कोमल मानवीय संबंध, जिसका धरातल मात्र संबंध होता है, धीरे-धीरे हमारे हाथ से जा रहा है. सभी संबंध व्यावसायिक बनते जा रहे हैं.

रज और घर वापस लौटने की भीड़ खोया हुआ सूर्यास्त हमें कहां दिखाई है. मेरी चिंता का दूसरा कारण संबंधों की कोमलता का निरंतर जाना है—चाहे आप इसे मेरी मानें, मुझे लगता है कि वह मानवीय संबंध, जिनका धरातल बंध होता था, धीरे-धीरे हमारे हाथ रहा है. सभी संबंध व्यावसायिक बने जा रहे हैं. किसी से मिलने से लाभ होगा, किसी की दोस्ती से लाभ या हानि होगी, संबंधों के बिगड़ने में यह बात इतनी अहम होती है कि प्रत्येक संबंध से मात्र संबंध विश्वास टूटता जा रहा है. यह बात दूर तक कुरेदती है. मानवीय संबंधों की सहजता कम हो रही है. इसका व्यावसायिक तंत्र को देना चाहें, की भाग-दौड़ को देना चाहें, करण को देना चाहें तो दे दीजिए. के सभी भागों में यही स्थिति है अब हमारे यहां भी तेजी से पनप है. जहां तक सेक्स की बात है, संसार में प्राचीन काल से वह एक बिकने वाली वस्तु —कमॉडिटी, के रूप में इस्तेमाल होता है. आज भी संसार के अनेक देशों में इसका महत्वपूर्ण पर्यटन उद्योग के रूप में उपयोग हो रहा है. हमारे देश में भी सेक्स बहुत छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति का अप्रत्यक्ष साधन या समझौता बनकर उभर रहा है, यह तो नजर आ ही रहा है.

इसलिए यदि वह कहानियों में भी स्वार्थों के समझौते के रूप में आ रहा है तो इसे सहज मान लेना चाहिए.

मुझे लगता है कि सेक्स को किन्हीं स्थितियों में, किन्हीं लाभों की पूर्ति के लिए बहुत भौतिक ढंग से इस्तेमाल करने की स्थितियां हमारे महानगरों और व्यावसायिक तंत्रों में तेजी से आ रही हैं. मुझे थोड़ा विचित्र तब लगता है, जब वैयक्तिक संबंधों में भी इसे आनंद की जगह इस्तेमाल का साधन समझ लिया जाता है.

कहानी का एक बहुत बड़ा पहलू-प्रेम कहानियों का, बड़े अच्छे स्तर पर ठीक-ठीक ढंग से प्रेम की स्थितियों को बितुनकर देखना या सेक्स के 'इन्वॉल्वमेंट' की स्थितियों को बितुन करके बड़े सुष्ठ ढंग से देख सकना—खोता चला जा रहा है. आज जो सेक्स वर्णन कहानियों में आता है, वह ऊपर से आरोपित किया हुआ, बिकने के लिए लिखा हुआ लगता है, आपको कैसा लगता है?

संबंधों की सहज और छूने वाली कोई अच्छी कहानी मैंने इधर पढ़ी हो याद नहीं आता. प्रेम-संबंध के की कहानियां पढ़ी हैं, प्रेम संबंधों व्यवसायीकृत हो जाने की कहानियां प्रेम संबंधों में एकाकी हो जाने की यां पढ़ी हैं, दरार और अविश्वास कहानियां पढ़ी हैं. शायद आधुनिक का यह दबाव हो. स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम की बदली हुई मानसिकता की कहानियां आ रही हैं और आनी परंतु सहज प्रेम संबंध का आस्वाद कहानी का जैसे अभाव हो गया

कहानी के शिल्प के संदर्भ में मेरे मन में एक बात उभर रही है. प्रायः मैं यह देख रहा हूं कि आत्मकथात्मक शैली में लिखने का आग्रह बढ़ता जा रहा है, कविताओं में भी यह बात आयी है, जैसे निजी अनुभूति को सार्वजनिक प्रामाणिकता प्रदान कर सामने रखा जा रहा है.

आत्मकथात्मक लेखन तो फिर भी कथा है, जिसमें कहानी का नैरेटर, कहानी लेखक से बहुत अलग हो सकता है. आत्मकथा 'मैं' से ही शुरू होती है. आत्मकथा का सबसे बड़ा संकट यह है कि 'मैं' अपने आप को कितनी निर्ममता से छील सकता है. अपने देश में 'आत्मकथा' लिखने की कोई पुष्ट परंपरा नहीं है और जो थोड़ी-बहुत आत्मकथाएं पिछले वर्षों में लिखी गयी हैं, उनमें इस निर्ममता का अभाव है. हमारा आत्मकथात्मक लेखन भी अधिकतर ऐसा ही है. आपने कविता की चर्चा की, मेरा खयाल है कि कविता में अनेक कवियों ने इस बीच अपने 'मैं' का खासा दुरुपयोग किया है. इधर की कविता में आया हुआ 'मैं' अत्यंत निरीह, शोषित, पीड़ित, लगातार सहते जाने वाला व्यक्ति, बड़ा ईमानदार बनकर उभरता है. 'मैं' की नजर से वह चारों ओर की व्यवस्था या व्यक्ति को देखता है जो उसे चालाक, धूर्त और शोषक नजर आते हैं. अपने आप के प्रति यह निरीहताबोध मुझे झूठी करुणा अर्जित करने का पाखंड-सा लगता है. जहां 'मैं' अपने आपको संपूर्ण विडंबनापूर्ण स्थितियों में सुरक्षित बचा ले और सारा दोष किसी दूसरे के सिर मढ़ दे, तो ऐसी आत्मकथात्मक कृतियों में कहीं झूठापन पैदा होगा, जैसा हमारी अधिसंख्य आत्मकथाओं में है.

कभी आपको ऐसा लगता है कि किसी कहानी में आप किसी पात्र को जैसा चित्रित करना चाहते थे, वह हाथ से फिसल गया. उसने स्वयं अपनी दिशा खोजी और अपने आप को गढ़ लिया?

ऐसा भी होता है. अपनी लंबी कहानी 'कितने संबंध' को मैंने 'मैं' की शैली में लिखा था. कहानी में एक स्त्री, कथानायक की किन्हीं स्थितियों में बहन बन जाती है, जिसे वह सदैव नापसंद करता रहा है. अंत में जाकर वे दोनों पात्र जिस रूप में उभरे, उस संबंध में मुझे एक पाठक का पत्र याद है. उसने मुझे लिखा—आपकी कहानी का जो 'मैं' था, प्रारंभ में लग रहा था कि वह बहुत उदार है, किसी अनचाहे संबंध को वह अपनी उदारता के कारण स्वीकार कर रहा है, परंतु अंत में आते-आते लगा कि बहन तो बहुत बड़ी थी, कमीना तो वह 'मैं' निकला. उस कहानी को जब मैंने अपने मन में सोचा था तो मैं उसमें अनचाहे संबंध के द्वंद्व और यातना को उभारना चाहता था परंतु कहानी जैसी बनी, उसमें अनचाहे बहन कहीं बड़ी हो गयी और वह 'मैं' उस बहन के सामने बहुत छोटा हो गया.

पृष्ठ ७२ पर जारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई तो

• विष्णु प्रभाकर

तीन दिन बाद मामा के घर पहुंची तो नंदिता लौट आयी थी. बोली, "अरे तू आ गयी. कभी मेरे उधर भी आ न. ऐसा भी क्या. . ."

नंदिता का मुख सहसा विवर्ण हो आया. वर्तिका मुस्कुरायी, "क्यों, कृष्ण ने मना किया है क्या?"

नंदिता बहुत पास आकर धीरे-से बोली, "मना नहीं करेंगे, पर मन से वह यही चाहते हैं कि मैं वहां न आऊं. पति के अधिकारों के प्रति बड़े सजग हैं. तुम्हारे बारे में न जाने क्या-क्या सुनते रहते हैं. प्रो. रूद्र और डा. रमाप्रसन्न उनसे मिलते रहते हैं. तुम अभी इलाहाबाद गयी थीं?"

"हां, कूपे में डा. रमाप्रसन्न के साथ गयी थी."

वे कह रहे थे, "किसी पर-पुरुष के साथ रात में कूपे में यात्रा करना, एक सीमा होती है स्वतंत्रता की. सच! क्या यह गलत नहीं?"

वर्तिका ने धीरे-से उसका कंधा दबाया, बोली, "सही-गलत क्या है, पता नहीं. पर बहनी, तुम्हें मेरे पास नहीं आना चाहिए. अच्छा!"

"जीजी!" नंदिता जैसे चीख उठेगी.

वर्तिका तब तक कुंतल भाभी के पास पहुंच चुकी थी. मुस्कराकर बोली, "हलो भाभी! कैसी हो?"

"ठीक ही हूं."

"यह ही क्यों? कहो ठीक हूं और हमारे बिट्टू भतीजे. . .

"आज सवेरे बहुत रोया. अम्मा कहती है पेट में दर्द है."

वर्तिका ने बिट्टू को गोद में उठा लिया. मुख चूम कर बो "बेटे! अभी से पेट की चिंता हो गयी. न, न, इतने लालची मत मम्मी से कहो, अपना पेट ठीक रखो, आपका पेट मेरा पेट

कुंतल हंस पड़ी.

वर्तिका ने धीरे से बिट्टू को लिटा दिया. नींद आ रही थी फिर भाभी के ऊपर झुककर बोली, "अब विश्वविद्यालय खटखटाओ डाक्टरेट के लिए."

"क्या होगा डाक्टरेट करके दीदी?"

"जीने से क्या होगा, फिर भी जीना है. जीना है तो स जीना आना चाहिए.

"जैसा तुम कहो पर मुझे तो सब कुछ छूछा लगता है."

"बाहर कहीं कुछ छूछा नहीं है. छूछा बस मन है. मैं तो नि कर चुकी हूं, अंत तक जिऊंगी, वह सब देखने के लिए जो मेरे नि निश्चित हुआ है. मृत्यु के आने से पहले क्यों मरा जाये!". . .

"जीजी, आपने एक बार बिना अपराध के दंड भोगने सांत्वना की चर्चा की थी."

"की थी भाभी! सांत्वना की उस तलखी को जो एक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ता है बार-बार भोगना चाहता है लेकिन हम फिर इन आप्त ...त्यों में उलझ गये. . .मैं देखूं जरा, चाय-वाय चल पड़ी या नहीं."

चाय पर मामी से बहुत देर बात करती रही. भाभी बच्चे के ...वास्थ्य के बारे में चिंतित थीं. पेट में कष्ट है. उसने यह भी कहा, ...कुंतल, कभी-कभी ऐसा बर्ताव करती है जैसे वह बेटे को परेशान ...रना चाहती है."

वर्तिका ने धीरे-से कहा, "आप इस बारे में भाभी से कुछ न कहें. . . ...क्टर क्या कहती है?"

"कुछ चिंतित है. कल शायद वे उसे अस्पताल में रखेंगी."

वर्तिका समझ गयी कि स्थिति कुछ गंभीर है, पर कहा उसने ...ही, "मामी! आशा करनी चाहिए सब ठीक होगा."

मामी का अंतर भीग-सा आया. दार्शनिक के से स्वर में बोली, ...जैसा वह चाहता है वही तो होता है."

तभी मामा ने आकर सूचना दी, "कल सवेरे दस बजे अस्पताल ...पहुंचना है."

तभी नीचे से मधुर की आवाज सुनायी दी. वर्तिका व्यस्त होकर ...उठी कि मधुर ऊपर आकर उससे चिपट गयी, "फ्लैट पर गयी ...थी, पता लगा आप यहां हैं. मामीजी, नमस्ते. मामाजी को भी. . ...कहां हैं कुंतल भाभी और उसका बेटा? अब तो बड़ा हो गया ...गा." और उत्तर की आशा किये बिना अंदर दौड़ गयी.

मामी सहसा बोल उठी, "वर्ति! तू इलाहाबाद गयी थी न."

"हां मामी, गयी थी. कांफ्रेंस थी. अकेली नहीं थी. डा. रमा...प्रसन्न भी थे, दोनों कूपे में थे."

मामी ने धीरे-से कहा, "तूने गलती की. रात में. . ."

"मामी, डा. रमाप्रसन्न की उमर पिताजी के बराबर है."

"सुना है, बहुत बदनाम है विश्वविद्यालय में. एक बार पकड़े ...गये थे. . .किसी लड़की के नंबर बढ़ाये थे."

"मुझे जानती हो तुम?"

"मेरे जानने से क्या दुनिया का मुंह बंद होता है. तुझे ध्यान ...रखना चाहिए. लोग सच-झूठ की चिंता थोड़े ही न करते हैं. वह उसे ...सच मानते हैं जिसे मानना चाहते हैं. . .!"

एकांत पाकर मधुर ने भी पूछा, "तुम इस बार इलाहाबाद ...गयी थी."

"हां गयी थी. डा. रामप्रसन्न साथ थे. कूपे में गये थे दोनों."

"पर जीजी! यह क्या ठीक हुआ? कैसा बेहूदा पत्र लिखा है ...उन्होंने सुबोध को. स्तब्ध रह गयी. सुबोध ने पत्र पूरा पढ़ा नहीं और ...फाड़ डाला. मैंने पूछा, "क्या है?"

"बोले, "डा. रामप्रसन्न हैं न, दिल्ली विश्वविद्यालय में. मेरे ...दीदी के रिश्ते में भाई लगते हैं. अपने सदाचार का प्रमाणपत्र भेजा ...उन्होंने मेरे पास ताकि सनद रहे और वक्त जरूरत पर काम आये".

मैंने कौतूहलवश फटे पन्नों को उठाकर पढ़ना शुरू किया कि ...उन्होंने झपट लिया और उसकी चिंदी-चिंदी कर डाली."

"किसी का सदाचार-पत्र नहीं पढ़ा करते पगली." वर्तिका ने ...मधुर का कंधा दबा दिया और बिना कुछ बोले बाहर चली गयी.

फ्लैट पर लौटकर वर्तिका ने पढ़ने की चेष्टा की. मौसी कॉफी ...बनाकर रख गयी. कई क्षण चुपचाप पीती रही मानो जिंदगी की ...कड़वाहट पी रही हो. क्यों है जिंदगी इतनी कड़वी? क्यों हम हर ...पल नैतिकता की चादर ओढ़े रहते हैं. . . ?

और क्यों भटक रही हूं मैं? कब तक लड़ती रहूंगी अकेले अपने से? क्या सचमुच कोई ऐसा व्यक्ति है जो मुझे नैतिकता से मुक्ति दिला सके. . .क्या नारायन मेरा साथ दे सकता है. . .?

सहसा उसने गरदन को झटका दिया. वह तनकर बैठ गयी. उसने तत्क्षण कलम और पैड उठाया और स्वयं अपने को चकित करती हुई लिखने लगी, तीव्र गति से मानो शब्द विचारों का साथ न दे पा रहे हों!

प्रिय नारायन,

बहुत भटकी हूं मैं पर दुख नहीं है भटकने का क्योंकि बहुत कुछ देखा है, और जाना है कि कितना कुछ है करने को.

मैं मध्यवर्ग से संबंध रखती हूं. यही वर्ग संचालन करता है समूचे राष्ट्र का. लेकिन स्वयं कितना रुग्ण, नैतिकता की नागपाश

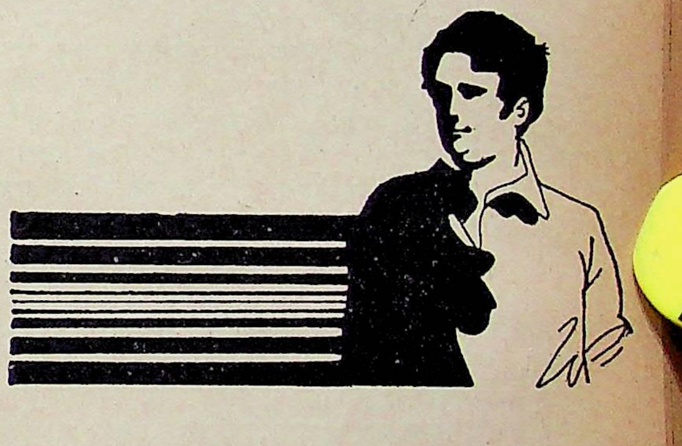

में जकड़ा हुआ, अस्तित्व के संकट से आक्रांत. . .

तुमने ही तो विवरण दिया है उस जघन्य घटना का जिसमें कुछ तथाकथित प्रबुद्ध युवकों ने पिकनिक पर गयी छात्राओं को शारीरिक रूप से अपमानित किया गया, लेकिन प्रधानाध्यापिका को उनके भविष्य की इतनी चिंता थी कि सार्वजनिक बयानों में वे अश्लील वाक्यों और मुद्राओं की चर्चाओं तक ही सीमित रहीं. यौन शुचिता की भावना कितनी शर्मनाक हो सकती है. . .

और मेरी मामी की कहानी! और मेरी कहानी! मैं अभी पिता की आयु के एक पर-पुरुष के साथ कूपे में गयी थी इलाहाबाद. कोई भी विश्वास करने को तैयार नहीं कि मैं अपने कौमार्य की रक्षा कर सकी हूंगी. . .

नारायन! क्या तुम यहां अनुभव नहीं करते कि सबसे पहली आवश्यकता आत्मनिर्भरता की है. नारी की आत्मनिर्भरता जो पुरुष-मानसिकता अर्थात सामंती मानसिकता की कलई खोल सके. .

किसान-मजदूर सभी दलित वर्गों की आत्मनिर्भरता जो आर्थिक और चेतना के शोषण से मुक्ति दिला सके. जिस देश की राष्ट्रीय आय का आधा भाग कृषि से आता हो, वहां कृषि और उससे संबद्ध लघु उद्योगों की इतनी उपेक्षा हो, इसीलिए न कि उत्पादन का ढांचा विलासोन्मुख है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवक कहाने वाले सारी सुख-सुविधा के भक्षक आज के विलासी नेताओं ने कुर्सी और सत्ता के लिए राजनीति को वेश्या बना दिया है. किसी भी प्रकार की मानवीय संवेदना में उन्हें विश्वास नहीं है. राज्य करने के लोभ से उन्होंने मनुष्य में मनुष्यत्व छोड़ा ही नहीं. जो व्यवस्था विशिष्ट जनों के हित के प्रति प्रतिबद्ध हो वह आदमी के साथ छलावा ही कर सकती है. प्रश्न जमीन की मजूरी का हो या औरत के स्वामीत्व का, अंत उसका हत्याकांड और बलात्कार में ही होता है.

शोषण और भ्रष्टाचार से आतंकित समाज में किसी एक आदमी को दोष भी तो नहीं दिया जा सकता. मैं विद्यार्थियों को दोष दे रही थी पर वे तो उसी समाज का अंग है, जो समूचा कठघरे में खड़ा है. . .

कहां से कहां पहुंच गयी मैं, संबद्ध. .असंबद्ध. . .क्या-क्या लिख गयी, पर अब और नहीं. . .शब्द बहुत गुबार उठा चुके. पोस्टमार्टम इतने हुए कि समूचा वातावरण सड़ांध से आक्रांत है. अब कोई तो कुछ करे. वह कोई तो क्या हम नहीं हो सकते.

मैं चाहती हूं कि मेरे फ्लैट में जो कमरा खाली हुआ है, उसमें तुम आ जाओ, पूरे फ्लैट का उपयोग करने के अधिकार के साथ.

न मैं थकी हूं, न आहत हूं. निश्चित भविष्य है मेरे सामने फिर भी एक अनचीन्ही वेदना मुझे निरंतर करुणा बनाती रहती है. उसी से बचना चाहती हूं. बचना चाहती हूं उन दुर्बल क्षणों से जो सूनेपन और आतंकित कर देने वाले ठहराव को आकर्षित कर सकते हैं.

तुम्हारे स्नेह की,
वर्ति

तीसरे दिन नारायण का उत्तर आ गया. लिखा था—

प्रिय वर्ति,

यह जानकर कितना सुख मिला कि कोई तो मेरी तरह सोचता है. बहस में मैं भी बहुत बार बहका हूं. अब भी सत्य छल कर जाता है मुझसे पर तलाश जारी है. जहां तलाश है वहां कोई सिद्धांत आड़े नहीं आ सकता. . .

सिद्धांत विधि-विधान, सब जड़ हो रहते हैं, एक दिन नये को जन्म देने के लिए. उस प्रक्रिया में जो दर्द होता है उसी को सह रहे हैं हम. दर्द के बिना कुछ मिलता है क्या?

वर्ति ! हम कोष के अर्थों को लेकर लड़ते हैं पर वे सही नहीं होते. भाषा जीने की प्रक्रिया में से उपजी थी. अर्थ पहले थे, शब्द बाद में आये. अब शब्द प्रमुख हो गया है. तभी तो हम छूछे हैं. भाषा को शब्द तो क्या, अर्थ से भी नहीं समझा जा सकता, भाव चाहिए उसे हृदयंगम करने को.

युगों पूर्व तात्कालीन परिस्थितियों में नैतिक नियम बने थे, वे आज वही भाव खो बैठे हैं, पर हम हैं कि उनके अर्थों से चिपके हैं. यही स्थिति नाना रूप से भ्रष्टाचार और ग्रंथियों को जन्म देती है. यह त्रासदी हर क्रांति से पूर्व अपने को दोहराती है. तब सभी संबंधों का अमानवीयकरण हो जाता है. . .

लो, मुझे भी तुम्हारी छूत लग गयी. बघारने लगा न दर्शन! मुझे तुम्हारा आमंत्रण स्वीकार है. . .

किसी दिन आकर चकित कर दूंगा तुम्हें!

तुम्हारे स्नेह का,
नारायन

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न
मगर क्या कीजे
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत
के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत
के सिवा,
मुझसे पहले सी मुहब्बत मेरे
महबूब न मांग!

रात को सोने से पहले गद्गद वर्तिका ने मौसी से कहा, "मौसी! वह नारायन है न, जिनका कमरा ठीक किया था, अब यहीं आकर रहेंगे."

मौसी बोली, "राजेंद्र के कमरे में? राजेंद्र की तरह?"

"नहीं मौसी, मेरी तरह."

मौसी की अनुभवी आंखों ने वर्तिका को परखा, "क्या मतलब?"

अत्यंत मधुर स्वर में वर्तिका बोली, "और कुछ मत पूछो."

उस रात वर्तिका ने अपनी डायरी में लिखा—

मैंने दिशा पा ली है, अब मुड़ कर नहीं देखूंगी. और अपनी ओर से ऐसा कुछ नहीं करूंगी जिसे अमैत्री की संज्ञा दी जा सके. विश्वास दूंगी, विश्वास चाहूंगी, जिस क्षण लगेगा विश्वास डगमगा रहा है उसे मुक्त कर दूंगी. . . .

अकेलापन कभी-कभी इतना असहनीय हो उठता है कि उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता. वह स्थिति नहीं आने देना चाहती मैं. . . .

सारी रात जागती रही वह. अपने से प्रश्न करती रही. . . ठीक किया न मैंने?

किससे पूछती हो?. . . .

अपने से. . .

निर्णय का अधिकार अपने को हो सकता है लेकिन वह ठीक है या गलत, यह निर्णय देने का अधिकार अपने को नहीं है.

किसे है फिर?

जो अपने से अलग है.

नहीं, नहीं, नहीं—मैं यह अधिकार उसे नहीं दूंगी.

यही विडंबना है. वह अधिकार उसे तुम्हीं ने दिया है.

मैंने. . . .

हां तुमने. तुम मात्र वर्तिका नहीं हो. तुम इकाई हो, इकाई शाश्वत है. किसी युग में किन्हीं इकाइयों ने अपने को मिलाकर समाज बनाया था और निर्णय का अधिकार उसे दिया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...के प्रति बदलता हुआ यह
...रिया वक्त की मजबूरी है या
...दमी की बेरुखी?
...से जुड़े सवालों का सुलगता संसार

...कथा विशेषांक

...रिका की ओर से नये साल की प्रथम भेंट
...जनवरी, १९८१

...लेकिन युग बदल गये हैं. क्या बदले युग में फिर से इकाई को ...का अधिकार नहीं है?

...है, लेकिन मात्र किसी एक इकाई को नहीं, इकाइयों को है.

...लेकिन एक इकाई को मांग करने का अधिकार तो है.

...है.

...तो उसी अधिकार का प्रयोग मैं कर रही हूं. नये का आह्वान ...क्रांति की भूमिका सदा किसी एक से ही आरंभ होती है....

...और वर्तिका का अंतर मौन हो गया. उसे मीठी-मीठी नींद ...गयी. स्वप्न देखा उसने. वायुयान में उड़ रही है वह, पास में ...न है, चारों ओर सुनहरी धूप है. उड़ते मेघ शावक हैं. दूर ...कहीं नक्षत्र है दीप्तमान, सब कुछ को दीप्त करता, वही ...है उनका....

...तभी शून्य में से, एक के बाद अनेक वायुयान प्रगट हो जाते हैं. ...गति से उनके यान की ओर बढ़ते हैं.

...नारायन कहता है, "सावधान वर्ति, आक्रमण हो रहा है!"

...वर्तिका कहती है, "होने दो, तुम साथ हो."

...आक्रमण होते रहते हैं, यान बढ़ता रहता है... कि भयंकर ...गर्जन मच उठता है!

...अंधकार छा जाता है. उसका हाथ अभी चक्के पर है कि चीख ...है वह, "नारायन.....यान में कोई है....!"

...सचमुच वर्तिका चीखी और उसकी चीख सुनकर मौसी की ...खुल गयी, "क्या है बेटी, डर गयी!"

..."ओ मां! कैसे छाती धड़क रही है....!" सच मौसी डर ...गयी, "पर अब ठीक है, सोओ तुम."

...मौसी सोचने लगी.....नारायन को अब आ ही जाना ...है! □

...८१८, कुंडेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-6

[लेखक के इसी नाम के उपन्यास का एक अंश, जो ...अक्षरकार प्रकाशन, तुर्कमान गेट, दिल्ली-6 द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित किया जा रहा है]

लघुकथा

तीस रुपये

यह कथा सिर्फ कथा नहीं, हालात द्वारा हम पर लादी गयी एक हकीकत है, जिसे कथा का रूप तो मैंने दे दिया है.

■ छाया वर्मा

"सुनो, सो गये क्या?"

"नहीं, क्या बात है?"

"एक बात कहूं?"

"कहो."

"नाराज तो नहीं होगे?"

"नहीं, कहो तो."

"सोच रही हूं, दीपू की स्कूल-बस छुड़वा दूं."

"फिर जायेगा कैसे?"

"पैदल चला जायेगा. कोई बहुत दूर तो नहीं."

"इतना पास भी तो नहीं... और फिर इतना भारी बैग....?"

"बैग मैं ले लिया करूंगी."

"तुम जाओगी छोड़ने?"

"हां, तो क्या हुआ, तब तक बेबी के पास तुम रहोगे ही."

"ठीक है. लेकिन क्यों?"

"सोचती हूं, महीने में तीस रुपये बच जायेंगे."

"उन पैसों का क्या करोगी?"

"दूध बढ़ा दूंगी. बेबी के पीने के बाद बेचारे दीपू के लिए एक कप भी नहीं बचता."

"........"

"चुप क्यों हो गये, कुछ गलत कहा मैंने?"

"नहीं, बस तो छुड़वानी ही पड़ेगी."

"और अगले महीने से दूध बढ़ा देंगे."

"दूध पीना शायद दीपू के नसीब में नहीं."

"क्यों?" वह झटके से उठ बैठी.

"अगले महीने से मकान मालिक ने किराया बढ़ा दिया है."

"बढ़ा दिया? कितना?"

"तीस रुपये!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनजानी इतिहास कथाएं

इतिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और किसी ने 'मानव जाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको चीखते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते हादसे नजर आयेंगे--वे हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते. अगस्त: 80, अंक: 2 से प्रारंभ इस श्रृंखला में इस बार प्रस्तुत है--शाहजहां की एय्याशियों के किस्सों की झांकी कि किस प्रकार वह शालीन होने के बावजूद न केवल खुद नुकसान में रहा बल्कि अपनी बेटी जहांनारा को भी ले डूबा--

पर नारी पैनी छुरी

▣ वाला दुवे

पर उसे पैनी छुरियों से ही खेलने का बेहद शौक था--तेज धार वाली पैनी छुरियों से!

यह खिलाड़ी था--अबुल मुजफ्फर शिहाबुद्दीन मुहम्मद साहिबे किरान-ए-सानी शाहजहां!.....जहांगीर और भानुमती उर्फ जगत गुसाईं राजपूतनी का बेटा--शाहजहां. जिंदगी में कभी किसी से 'तू' करके नहीं बोला. हमेशा 'आप' कहा, भले ही छोटा हो या बड़ा. खुशबू का बेहद शौकीन, खास तौर से गुलाब के इत्र का दीवाना.

शाहजहां की बड़ी बेटी जहांनारा उर्फ बेगम साहिब थी बहुत सुंदर. और मशहूर था कि वही पैनी छुरियों को फुसलाकर शाहजहां की 'ख्वाबगाह' में लाती थी. करीब डेढ़ करोड़ रुपये खर्च किये थे शाहजहां ने ख्वाबगाह बनवाने में. चारों ओर आदमकद शीशे और सोने के पत्तर चढ़ी दीवारें.

मैनरीक लिखता है कि शाहजहां की नजर अपने साले शाइस्ता खां की खूबसूरत बीवी पर पड़ी और जहांनारा उसे शाहजहां का अद्भुत कमरा दिखलाने ले आयी. शाहजहां ने उसके साथ जबरदस्ती की. किले से लौटकर वह सीधी अपनी हवेली आयी, जहां आज फैज बाजार की पुलिस कोतवाली है, वहीं शाइस्ता खां रहता था.

शाहजहां की चहेती बेगम मुमताजमहल का भाई, आसफ खां का बेटा--शाइस्ता खां. उसकी बीवी ने आकर चटाई बिछाई और लेट गयी. आंखों से संताप की नदी बह निकली. वह यही कहती रही कि वह नापाक हो गयी है. शाइस्ता खां ने समझाया, उसे हर हाल में कबूल किया. रिश्तेदारों ने समझाया, शहर के बुजुर्ग नारुह ने समझाया, पर वह नहीं मानी. सात-आठ दिन तक भूखी-प्यासी रहकर वह मर गयी.

शाहजहां और जहांनारा सुनकर कांप गये थे. किस तरह बदबू फैली थी दिल्ली के वातावरण में. और शाइस्ता खां शाहजहां का जानी दुश्मन बन गया और बाद में औरंगजेब का अनन्य मित्र.

उधर खलीलुल्लाह खां की बीवी हमीदा बानू के चर्चे दिल्ली भर में फैले हुए थे. खलीलुल्लाह खां मीर मीरान यज्दी का छोटा बेटा था. उसकी शादी आसफ खां की पोती से हुई थी. इस रिश्ते

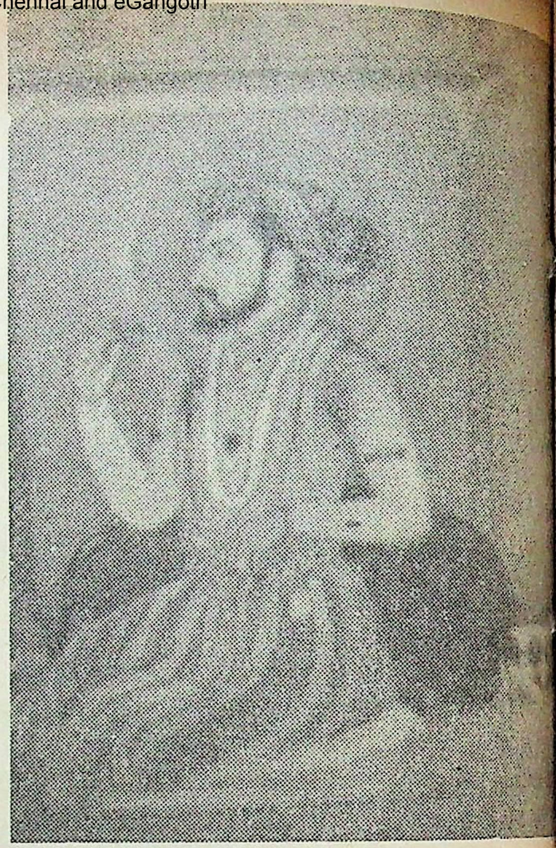

● शाहजहां : पैनी छुरियों का शौकीन!

से हमीदा बानू शाहजहां की भतीजी लगती थी. बड़ी पैनी थी हमीदा बानू! शाहजहां की चहेती पैनी छुरी बन गयी पांव में तीन लाख की जूती पहनकर जब वह पालकी में बैठ लाल किले आती तो चांदनी चौक के फकीर-फुकरे यह लगाते, "ऐ लुक्मा-ए-शाहजहां, कुछ इधर भी!" और वह होकर उन्हें बख्शीश देती जाती.

दरबार के रईस खलीलुल्लाह खां पर फब्तियां कसते. किसी ने शाहजहां के कान भरे कि उसकी बीवी पांवों में लाख की जूतियां पहनती है तो शाहजहां ने भरे दरबार में लुल्लाह खां से पूछा था, "क्या यह सच है?" तभी किसी मन अमीर ने कहा था, "हुजूरेवाली, खलीलुल्लाह खां साहिब सारी जायदाद बेगम साहिब के पांवों में रहती है. कभी-क वे इन जूतियों को खां साहब के मुंह पर भी मार दिया करती

सारा दरबार हंस पड़ा था. खलीलुल्लाह खां के दिल सांप लोट गये. आखिर वह बहरा नहीं था. उसने भी सब सुन रखा था. यही खलीलुल्लाह खां भी शाहजहां का दुश्मन और फिर औरंगजेब का दोस्त.

जब सामूगढ़ की लड़ाई लड़ने दाराशिकोह चला था हमीदा बानू ने उसे आगाह किया था कि वह खलीलुल्लाह सतर्क रहे. खलीलुल्लाह खां की कमान में 30,000 घुड़ थे. औरंगजेब तो लड़ाई करीब-करीब हार ही गया था. उसने खलीलुल्लाह खां के कुचले स्वाभिमान को कुरेदा "दारा की जीत, शाहजहां की जीत होगी....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संबंध उसकी बेगम से हैं!" खलीलुल्लाह खां उस समय उठाये सांप की भांति बन गया था. उसी ने तो बहकाकर को उसके हाथी से नीचे उतरवाया था और वही ऐन वक्त 30.000 सवार वापस मोड़कर औरंगजेब से मिल गया था.

और दूसरा था जाफर खां. शाहजहां के ससुर आसफ खां बहन का लड़का, जिसकी शादी फरजाना बेगम से हुई थी. जाना बेगम भी शाहजहां की मनपसंद पैनी छुरी थी.

'मा आसिरे उल-उमारा' में लिखा है कि शाहजहां और जाना बेगम का बेटा नामदार खां हू-ब-हू दारा जैसा लगता था. जाना पर शाहजहां इस कदर मोहित हुआ था कि एक बार उसने जाफर खां को हमेशा के लिए हटाने का इरादा कर लिया पर फरजाना के कहने पर जाफर खां को पटना का सूबेदार बना- भेज दिया गया था. जाफर खां को शाहस्ता खां ने आगाह था. और फिर वह भी शाहजहां का दुश्मन बना.

फिर मीर मुस्तफा खां की बेगम पर शाहजहां की नजर पड़ी. के बाद एक पैनी छुरियां इकट्ठी करने लगा था वह. तभी में एक और भयंकर अफवाह उड़ी. शाहजहां का अनुचित अपनी बेटी जहांनारा से है!

शाहजहां और जहांनारा के संबंध?

काल में बाहर से आये यूरोपियन यात्रियों ने इस अफवाह अपने कानों सुना. यहां तक कि मुल्लाओं ने भी अपने लंबे- विचार प्रकट कर डाले, "बादशाह ने जिस दरख्त को अपने में लगाया है, उसके फल खाने का उसे हक है!" क्या मतलब जाये इसका?

प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ लिखता है—"अगर जहां और उसकी बेटी के बारे में यह दुखदायी अफवाह कुल सत्य नहीं है तो बिलकुल असत्य भी नहीं है. यह बात नहीं है कि शाहजहां बहुत एय्याश था और जहांनारा की के किस्से अपनी जगह मशहूर थे....फिर भी यह विश्वसनीय-सा तो लगता ही है कि क्या वे इतने गिर चुके थे? कि इस प्रकार के उदाहरण कुछ वर्ष पहले दक्षिण अफ्रीका 'बोअर' जाति में प्रमाणित हुए हैं."

मानूची अपनी पुस्तक 'स्टोरिया डि मोगोर' में लिखता है वह बर्नियर के इस कथन को 'नीचे तबके के लोगों की शरारत- अफवाह मात्र मानता है.'

सर रिच डटैंपल कहता है, "मैं इसे ऊंचे तबके में प्रचलित शरारतपूर्ण अफवाह मानता हूं, जो कि अक्सर हिंदुस्तान के में पायी जाती है. यह बात सही है कि मुगल शाहजादियों विवाह पर पाबंदी लगा दी गयी थी.....शाहजहां काफी था और यह भी सत्य था कि उसने जहांनारा को काफी दिये थे. उसका पक्षपात वह खुलेआम करता था. इसीलिए यह अफवाह फैली हो."

हो सकता है कि चोट खाये लोग—जैसे शाइस्ताखां, खली- खां, जाफर खां, मीर मुस्तफा खां आदि का इस अफवाह में हाथ हो. या शायद यह डरी हुई प्रजा के मौखिक का दबा हुआ सा-विस्फोट मात्र हो.

बंदी रूप में भी शाहजहां एय्याश ही रहा. उसके अंत

● जहांनारा: खिदमतगार बेटी!

के बारे में मानूची और बनारसी प्रसाद सक्सेना लिखते हैं 'वह 61 वर्ष की आयु में भी युवा बनने का असफल प्रयास करता रहा.'

शाहजहां की मौत और मौत की शिनाख्त

एक दिन जब वह शीशे के आगे खड़ा होकर अपनी मूंछें ठीक कर रहा था तो पीछे खड़ी आफताब और माहताब नाम की दो खूबसूरत लौंडियों ने मुंह बिचकाकर आपस में उसका मजाक उड़ाया. इस क्रिया को शाहजहां ने शीशे में देख लिया. उसके दुर्बल अहं को जबरदस्त धक्का लगा और उसने फौरन अपने हकीम रिज्कउल्ला मुकर्रम खां से औषधियुक्त तेल मंगवाकर मालिश करवायी. वह कुछ तेज कुश्ते भी खा गया. दवाओं का फौरन ही विपरीत असर हुआ. उसका पेशाब बंद हो गया, पेट में भयंकर मरोड़े उठने लगे और तेज ज्वर ने घेर लिया. उसके निजी हकीम वृंदावन ने नौ दिन तक इलाज करके उसे कुछ ठीक तो कर डाला पर शायद उसका अंत आ चुका था.

जब शाहजहां मर गया तब औरंगजेब ने अपना एक विश्वस- नीय आदमी भेजा. उसने लाल तपी सलाख शाहजहां के पांव के पास फेरी. जब लाश में कोई सिहरन न हुई, तब उसने औरंगजेब को जाकर बतलाया कि शाहजहां सचमुच मर गया है!

—— अगले अंक में ——

पतझड़ का अंतिम गुलाब

1774! जब भारत पर कब्जा करने के लिए फ्रांस और इंग्लैंड जूझ रहे थे—फ्रांसीसी मैडम टैलीरेंड का रोमांचक किस्सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ःपढ़ा

एक मौका और दिया जाये हुजूर!

माई लार्ड! आपने अभी-अभी कटघरे में खड़े इस तथाकथित हत्यारे का बयान सुना. मेरे खयाल से इसके बाद और किसी गवाह के बयान या वकीलों की जिरह सुनने की जरूरत नहीं रह जाती. इसमें कोई संदेह नहीं कि इसने जो कुछ कहा, सच कहा. दरअसल यह इस कदर अनुभवहीन है कि सच के सिवाय और कुछ कह भी नहीं सकता, मगर यह जरूरी नहीं कि इसका सच औरों का भी सच हो. सूरज का गोला एक सच्चाई है, पर एक ही समय वह एक के लिए उगता सूरज और दूसरे के लिए डूबता सूरज होता है. यह आप पर निर्भर करता है कि उस सच्चाई को देखने के लिए आप कौन-सी जगह चुनते हैं खड़े होने को.

यह अपने को ढंग का आदमी कहता है और एक ढंग की नौकरी पाने का अधिकारी मानता है. यह किस ढंग का आदमी है, किस ढंग की नौकरी करने को उत्सुक है और उसे पाने को किस ढंग की हरकत करता है, यह आप सुन चुके हैं. हम इसके तर्क को बेढंगा नहीं कहेंगे, क्योंकि यह इसका सच है. हमारे समाज में मनुष्य को उसका चरित्र नहीं, धन प्रतिष्ठित करता है. धन किस ढंग से अर्जित किया गया है, इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता, वरना मिलावट के धंधे में सक्रिय रूप से शामिल हो जाने को व्यग्र यह आदमी अपने को ढंग का आदमी कहने का साहस न कर पाया होता.

तथाकथित हत्यारा एक इंजीनियर है और ढंग की नौकरी के लिए इंटरव्यू देने को एक प्रौढ़ के पास जाता है. गौर कीजिए महामहिम, वह 'प्रौढ़' है, इसकी तरह नादान बच्चा नहीं. प्रौढ़ है, जभी पत्थर सप्लाई करने का सरकारी ठेका हासिल कर चुका है. सरकारी रेट्स अच्छे होते हैं, मगर सरकारी ठेके दिलवाने के रेट्स भी उतने ही ऊंचे होते हैं. हत्यारा शायद यह नहीं जानता कि एक सरकारी फाइल को अपनी मंजिल तक पहुंचने के लिए कितने पड़ावों से गुजरना पड़ता है. दर्जनों जगह पिंडदान करो, दर्जनों आत्माओं को तृप्त करो, तब जाकर फाइन बिल की सद्गति होती है. खालिस माल की सप्लाई करने का अर्थ हुआ अपना दीवाला पिटवाना. सरकारी नौकर पत्थरों से भी तेल निकाल लेने की क्षमता रखते हैं. ऐसी स्थिति में मिलावट द्वारा उन पत्थरों का वजन बढ़ाना ठेकेदारों के लिए केवल सैद्धांतिक उलझन ही नहीं, आर्थिक अनिवार्यता का प्रश्न भी हो जाता है?

अबोध हत्यारे को मिलावट की तकनीक नहीं आती थी, इंटरव्यू में छांट दिया गया. सरजूप्रसाद को आती थी, चुन लिया गया. हत्यारे ने सरजू के पैरों पर सिर रख दिया, शिष्यत्व देना ही पड़ेगा, दीक्षित करना ही पड़ेगा, पत्थर में मिलावट करने की कला सिखानी ही होगी. हाय, यह अंधा अपने उस्ताद की मजबूरी देख नहीं पाया. द्रोणाचार्य उस समय तक बिक चुके थे. एपायंटमेंट लेटर स्वीकार कर चुके थे. गुरु के ज्ञान का कापीराइट ठेकेदार के पास पहुंच चुका था, पर यह बेवकूफ बीच बाजार में पांव पकड़ उस्ताद की ऐसी-तैसी करने लगा, उसका बखिया उधेड़ने लगा. सरजूप्रसाद इसे दुत्कारता नहीं तो और क्या करता? अब जरा देखिए ढंग के इस आदमी को. यह गिड़गिड़ा [illegible] सकता है और तिलमिला भी सकता [illegible] दुत्कारे जाने पर यह अपने असली रंग [illegible] आ गया. गुरु को डराने या चोट पहुंचा[illegible] के इरादे से इसने छुरा निकाल लिया[illegible] आज का एकलव्य अंगूठा काटकर तो न[illegible] देता, गुरु को अंगूठा दिखाकर भी बस न[illegible] करता, सिर काटकर गुरु-दक्षिणा देता है[illegible]

> **"कानून की दृष्टि में आत्महत्या ही एक ऐसा काम है, जिसको सफलता से कर लेनेवाला निर्दोष और जिसमें असफल रह जाने वाला दोषी माना जाता है." 'सारिका' मई 1980, अंक : दो में प्रकाशित मनहर चौहान की कहानी 'एक तथाकथित हत्यारे का बयान' पढ़ते-पढ़ते व्यंग्यकार किट्टू रुक गये और कलम उठाकर एक और मौके की फरियाद कर बैठे. प्रस्तुत है, एक और चुलबुला खत.**

सरजू प्रसाद मरा नहीं है. सरजूप्रसा[illegible] कभी नहीं मरता. प्रेतों की दुनिया के वा[illegible] के लिए दुबारा मरने का प्रश्न ही न[illegible] उठता. यकीन न हो तो आप उस प्रौढ़ [illegible] देखें. वह आज भी मजे से सरकार को पत्थ[illegible] की सप्लाई कर रहा है और उसका दीवा[illegible] नहीं निकला है. जाहिर है, उसके मातह[illegible] में एक सरजूप्रसाद है, जिसके पास [illegible] ऐसा तरल पदार्थ है, जिसके छिड़क [illegible] से पत्थरों का वजन बढ़ जाता है. आप[illegible] जानकारी के लिए यह बता दूं माई ला[illegible] कि सरजू प्रसाद न इंजीनियर है और [illegible] वैज्ञानिक. वह केवल एक वजन है. [illegible] मेरा मतलब है, वह एक सरकारी अफ[illegible] का साला है, जहां ठेकेदार पत्थरों [illegible] सप्लाई करता है.

तथ्य यह है कि अभियुक्त के हाथों कि[illegible] की हत्या नहीं हो पायी. यह अनाड़ी क[illegible] भी काम ढंग से नहीं कर पाता. इस[illegible] तर्क के अनुसार मिलावट की कला सीख[illegible] इसके लिए आत्मरक्षा का प्रश्न [illegible] क्योंकि ऐसा न करता तो इसे ढंग की नौक[illegible] नहीं मिलती और एक दिन इसे आत्मह[illegible] कर लेनी पड़ती. इसके तर्क समझ में आ[illegible] हैं, पर क्या हम नहीं कह सकते कि 'आ[illegible] रक्षा' के नाम पर यह 'आत्महत्या' क[illegible] जा रहा था? प्रेतों की दुनिया में जाने [illegible] लिए यह अपने को मारने की कोशिश क[illegible] रहा था? कानून की दृष्टि में आत्मह[illegible] ही एक ऐसा काम है, जिसको सफल[illegible] से कर लेने वाला निर्दोष और जि[illegible] असफल रह जाने वाला दोषी माना जा[illegible] है. यह दोषी है माई लार्ड! पर इस[illegible] कच्ची उम्र को देखते हुए इसे एक मौ[illegible] और दिया जाये हुजूर! हो सकता [illegible] अगली बार ढंग की जिंदगी जीने की ल[illegible] में अपनी हत्या कर लेने में यह सफल [illegible] जाये और अपने को निर्दोष साबित कर स[illegible]

■ किट्[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खुदा सही सलामत है!" यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा—आसमान का या जमीन का—सही सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की पड़ताल करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते बल्कि पूरी इनसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं. और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल—बंदों की सलामती का सवाल.

अगस्त, अंक-2 : 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' उपन्यास की शुरुआत थी. पिछले अंक में आपकी मुलाकात हुई थी शिवलाल से जिसे अपनी चक्की के लिए कबाड़ी से चोरी का एक पट्टा खरीदने के जुर्म में पुलिस पकड़ ले गयी थी और पास-पड़ोस के लोग उसकी बीवी गुलाबदेई को पहले से आश्वासन तो देते रहे, पर आड़े वक्त सभी ने हाथ खींच लिये. लीजिए इस किस्त में मिलिए हैदरी से.

खुदा सही सलामत है

• रवींद्र कालिया

हैदरी इस गली की सबसे पुरानी बाशिंदा थी. हैदरी उन दिनों की यादगार है, जब इस गली में सांझ घिरते ही पायल बजने लगती, हारमोनियम और सारंगी रात-रात भर जवान रहते. अब जमाना बदल गया था. तवायफों की हालत काबिले रहम हो गयी थी और साजिंदे धीरे-धीरे खुदा को प्यारे हो गये थे या रेडियो में भरती. वाकर भी इसलिए बच गया कि बीस बरस पहले आकाशवाणी में एक सारंगीवादक के रूप में भरती हो गया था. पिछले बरस यके-बाद-दीगरे उसके साथ जो दुर्घटनाएं हुईं, उनसे वह पूरी तरह टूट गया—शहनाज की बेरुखी और 'रिटायरमेंट' एक साथ कुफ्र की तरह उसके ऊपर टूटे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहनाज को खोकर और रिटायरमेंट पाकर वह बहुत अकेला हो गया. हकीमजी के चौतरे पर पड़ा रात-रात भर पागलों की तरह सारंगी बजाता. मुहल्ले वाले समझते, बाकर मौत को बुला रहा है. बाकर को इस आलम में देखकर हैदरी बी जाड़े की बेहद बर्फीली रात में भी अपने सूती लिबास में ठिठुरती हुई गली में आकर चिल्लाने लगती, "बाकर, अब सो जाओ. सारी दुनिया सो गयी है. तुम्हारी सारंगी सुनकर तो न अब जरीना लौट सकती है और न नौकरी. तुम्हारी सारंगी सुनकर मेरे जिगर में कुछ डूबने लगता है. बंद करो अब बाकर अपना यह कारोबार! तुम्हारी सारंगी के बोल सुनकर मेरी बूढ़ी हड्डियों में थिरकन आने लगती है. अल्लाह ने मुझे भी अक्ल दी होती तो शहनाज बेगम की तरह कोयले की दलाली करने लगती और तुम्हें कभी यों लाचार न देखती."

बाकर की दाढ़ी बढ़ी हुई थी. उसकी लंबी कलात्मक उंगलियां सूखकर लौकी की बेल की तरह हो गयी थीं. आंखों में मल भरी थी. कपड़ों से बू आ रही थी और वह एक भिखारी की तरह हकीमजी के चौतरे पर निढाल पड़ा रहता. बीच-बीच में धुन में आकर पागलों की तरह सारंगी बजाता. कुछ राहगीर सारंगी सुनने को खड़े हो जाते और आते-जाते उसकी तरफ एकाध सिक्का उछाल जाते. बाकर उन सिक्कों से बेन्याज पड़ा रहता. मुहल्ले के लौंडे मौका मिलते ही सिक्के उठाकर भाग निकलते.

हकीमजी के बच्चे अब मृतसंजीवनी सुरा के नाम पर ठर्रा बनाते थे. खुद पीते थे और पूरे मुहल्ले को पिलाते थे. लड़कों में हकीमजी का कोई गुण नहीं आया था सिवाय इसके कि वे अपने बाप की तरह खुदातर्स और भावुक थे. दूसरों के दुःख को शिद्दत से महसूस करते थे. बाकर एक ऐसा कलाकार था कि उसे दूर-दूर से बुलाए आते थे. यह वही कलाकार था जिसकी सारंगी की धूम दूर-दूर थी. बड़ी-से-बड़ी गानेवालियां इस फिराक में रहती थीं कि बाकर मियां उनके साजिंदों के साथ हो लें. बाकर मियां जिस किसी के साथ हो जाते, उसका धंधा कुलांचें भरने लगता. अपनी जवानी में बाकर का कोई सानी न था. लड़ाई के दिनों में जब अंग्रेजों ने शहर में छावनी डाली थी तो वह एक-से-एक रसिया को पकड़ के ले आता था. लोकधुनें सुनकर कई गोरे बहुत खुश होते और मुंहमांगी बख्शीश देते.

बहुत पहले अजीजन ने बाकर को कई बार कहलाया था कि वह उसके साजिंदों में शामिल हो जाये. बाकर को अजीजन के महत्त्व का एहसास था, मगर वह जिद्दी आदमी था. उसकी जिद थी कि वह अपने साथ तबलची भी लायेगा और अजीजन अपने पुराने तबलची नियाज को किसी भी सूरत में निकालने को तैयार न थी.

आखिर अजीजन ही उसके काम आयी. जब एक-एक कर सब खैरख्वाह लोग कन्नी काट गये और अजीजन को इत्तिला लगी कि बाकर मौत के कगार पर खड़ा है तो वह तुरंत हकीमजी के चौतरे पर जा पहुंची.

"खैरियत तो है बाकर मियां?" अजीजन ने बाकर के गर्म माथे पर अपनी हथेली टिकाते हुए पूछा.

"इनायत है, अजीजन बी." उसने उठने की कोशिश करते हुए कहा, मगर उठ न पाया. इसी क्रम में उसे खांसी का दौरा पड़ा. वह फिर कुछ बोल नहीं पाया. अपनी दुबली, बीमार और कृश उंगलियों से उसके प्रति आभार प्रकट करता रहा.

"मैं तुम्हें अस्पताल में दाखिल करवाने की कोशिश करूंगी," अजीजन ने कहा. वह फौरन अस्पताल की ओर चल दी.

अस्पताल में उसके एक परिचित डाक्टर थे, डा. उस्मानी. डा. उस्मानी के पिता अजीजन के अच्छे दोस्त थे. उसने अस्पताल जाकर उनके बारे में पूछा तो मालूम हुआ कि वे छुट्टी पर हैं. अजीजन ने वहीं अस्पताल से टेलीफोन पर बात की. डा. उस्मानी ने दाखिले का इंतजाम कर दिया.

थोड़ी देर के बाद जब अस्पताल की गाड़ी गली में दाखिल हुई तो हकीमजी के चौतरे के सामने भीड़ लग गयी थी. बच्चों, बूढ़ों, बढ़ियों की भीड़. सब लोग अजीजन की तरफ श्रद्धा से देख रहे थे. पोर्टर जब बूढ़े बाकर को स्ट्रेचर में लिटाकर ले जाने लगे तो अजीजन ने दोनों को पांच-पांच के नोट थमा दिये.

थोड़ी देर में वैन बाकर को लेकर चली गयी. हकीमजी का बड़ा लड़का जो खुद अस्पताल में दाखिल होने लायक था, साथ में गया. उसने सोचा, किसी दिन अजीजन से कहकर खुद भी भरती हो जायेगा.

अस्पताल की वैन बाकर को लेकर रवाना हुई तो है... गश खाकर वहीं चौतरे पर गिर पड़ी. लोगों ने ठंडे पानी की बूंदें उसके मुंह में डालीं तो वह शेरनी की तरह चौंककर होश में... और शहनाज बेगम की दूकान के सामने उसने जमकर मि... किया.

शहनाज बेगम से हैदरी को शुरू से ही रश्क था. दिसंबर... में पुलिस का छापा पड़ते ही शहनाज बेगम ने चुपचाप को... की दूकान कर ली और घोषणा कर दी कि हिंदुस्तान आ... हो गया है. अब यह सब नहीं चलेगा. लोग फिल्म देखेंगे... गाना सुनने के इरादे से इकबाल गंज में जो कदम रखेगा, पुलि... मार-मार के भरता बना देगी. कोयले की दूकान दूर-दूर तक न... शहनाज बेगम ने तय किया, क्यों न कोयले का धंधा ही शुरू कि... जाये. इस धंधे में दिन भर में दो-तीन रुपये उसे मिल जाते... भी आराम हो गया और मुहल्ले वालों को भी. शहनाज के... एक मकान था और कुछ नहीं था. मकान का वह क्या करती... नीचे की कोठरी में अपनी नन्हीं-सी दूकान बैठा ली. कोयले... दूकान ही उसने क्यों खोली, वह खुद नहीं जानती. उस वक्त... यही सूझा था.

"जिंदगी भर काला धंधा ही तो किया है," वह क... "यह इसी मुल्क में हो सकता था कि मौसीकी और रक्स भी का... धंधा बनकर रह जायें." वह कहती.

लोगों का खयाल था कि शहनाज बेगम ने बाकर की... से पूरा पैसा हथियाकर उसे लतिया दिया. जबकि सच्चाई... थी कि शहनाज बेगम ने शुरू से ही अपनी सीमित आय से... की मदद ही की थी. डा. अस्करी से उसको इंजेक्शन भी ल... थे. मगर वह दिन-ब-दिन मजबूर होती चली गयी. उसका... बुढ़ापा उसके सामने मुंह बाये खड़ा था. इससे ज्यादा वह क... क्या सकती थी. बाकर ने भी कभी अपने मुंह से शहना... बुराई न की. वह जवानी में उस पर फिदा था मगर तब...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंच के बाहर थी. शहनाज उसे तब मिली जब दोनों बूढ़े थे. अब उसकी जिंदगी एक खुश्क पत्ते की तरह थी, जिधर आता उधर हो लेता. और कहीं जगह न नसीब हुई तो बाड़े में ही लेटा रहता. हैदरी बी से उसकी यह हालत बरदाश्त ती. वह शहनाज बेगम की दूकान के आसपास खड़ी होकर चिल्लाती, "खसम किया था तो जिंदगी भर साथ-साथ ती! तुममें इतनी भी मुरव्वत नहीं कि जाकर इमामबाड़े में देख आओ! वह एक लावारिश लाश की तरह वहां पड़ा री सांसें गिन रहा है!"

शहनाज बेगम ने दसियों साल पहले तय किया था कि वह की किसी बात का जवाब न देगी. वह चुप रहती या उठकर दूसरी जगह चली जाती. जाते-जाते वह एक वाक्य बोल कि "तुम्हारे चलते ही रंडी की जात बदनाम हुई है." ज बेगम तो इतना कहकर गायब हो जाती और कहीं में बैठकर सरौते से सुपारी काटती, मगर हैदरी को पूरे के लिए मसाला मिल जाता.

आज हैदरी बी की जबान लड़ाने में दिलचस्पी नहीं थी. बुलेन्स के पीछे रोती, कलपती, छाती पीटती, तेज-तेज ों से चली जा रही थी.

र मियां. . . . वाकर मियां." वार्ड का मुख्य दरवाजा पार ही हैदरी ने वाकर को पुकारना शुरू कर दिया. मगर वाकर हीं था. वह दूसरी मंजिल पर वार्ड नंबर तीन में पड़ा था. हर किसी से वाकर का अता-पता दरियाफ्त करती. र वार्ड नं. 3 तक पहुंच ही गयी. वाकर को देखते ही चिल्लायी र मियां!"

वाकर मियां जिस करवट पड़े थे, वैसे ही पड़े रहे. उनके चेहरे क अजीब-सा दिव्य भाव था. वह बिल्कुल शांत पड़े थे. दुनिया से एकदम बेखबर. उन्हें शायद नींद की दवा दी थी.

"वाकर मियां, देखो हैदरी तुम्हारी खिदमत करने आयी" हैदरी ने उसके कान के पास झुकते हुए कहा.

वाकर मियां ने हैदरी की पुकार की तरफ कोई ध्यान नहीं उसी तरह आंखें मूंदे पड़े रहे.

हैदरी की आवाज से पास वाले बैड का एक बूढ़ा रोगी या. उसकी आंखों में भी मैल भरी थी मगर खिचड़ी-सी के भीतर उसकी तेज आंखें जगमगा रही थीं.

"यह तो जबसे आया है, ऐसे ही सुध-बुध खोकर पड़ा है"

"ऐसे ही पड़ा है?" हैदरी ने उससे पूछा, "डाक्टर ने क्या"

वह आदमी हंसा, और कुछ बुदबुदाया, "डाक्टर ने कहा, अच्छा होता सब मरीज इसी तरह पड़े रहते."

र वह आदमी वहशी तरीके से हंसने लगा.

हैदरी ने वाकर की यह हालत देखी तो रोना शुरू कर रोते-रोते वह छाती पीटने लगी. शोर सुनकर अचानक र्स दौड़ी हुई आयी.

"तुम लोगों ने उसे जहर का टीका लगा दिया. मुझे सब मालूम पड़ गया है. तुम लोगों ने अभी-अभी मेरे सामने जहर का टीका लगाया है. तुम लोग मरीजों से छुट्टी पाना चाहते हो. तुम लोगों को दोजख में भी जगह न मिलेगी. तुम लोगों ने मोहम्मद साहब के साथ भी यही सलूक किया था." हैदरी बी ने आव देखा न ताव, स्टूल पर आल्थी-पाल्थी मारकर बैठ गयी और लगी मरसिया पढ़ने :

अरे लोगो, मेरे बाबा को बुला दे कोई,
अरे लोगो, मेरे भैया अली अकबर हैं कहां?

बाइस नंबर के बिस्तर पर एक मुसलमान घड़ीसाज बेहोश पड़ा था. कटरे से आते हुए घंटाघर के पास उसका रिक्शा उलट गया था. उसके आस-पास बहुत से रिश्तेदार खड़े थे. अचानक वह बूढ़ा घड़ीसाज 'हुसेन-हुसेन' कहता हुआ उठा. उसके रिश्तेदारों पर हैदरी बी की वाणी का इतना प्रभाव हुआ कि उन्होंने उसे घेर लिया और बूढ़े घड़ीसाज के बैड के पास ले गये. हैदरी बी ने नौहा शुरू किया :

सगरा मदीना लुट गया
चिल्लायीं जैनब पीटकर
सगरा मदीना लुट गया.

घड़ीसाज के रिश्तेदारों ने जोर-जोर से मातम शुरू कर दिया. अस्पताल में मातम होता देख एक नर्स और डाक्टर भागते हुए आये.

"इन्हीं लोगों ने मुहम्मद साहब की जान ली थी. यही लोग अब खुदा के बंदे वाकर मियां का भी काम तमाम करना चाहते हैं. मैं कमिश्नर साहब को इसकी इत्तिला दूंगी."

एक जूनियर डाक्टर हैदरी का अस्पताल में बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर बोला, "वाकर मियां को बचाना है तो मेडिकल कालेज में भरती करवा दो. मैं चिट्ठी लिख दूंगा. वह न कुछ खा रहा है, न पी रहा है."

"वाकर मियां यहीं दम तोड़ेंगे. इसी अस्पताल में शहीद होंगे. वह तुम लोगों के पास इलाज के लिए आये थे. तुम लोगों ने उनकी जान ले ली." हैदरी फिर रोने लगी.

"हमारा एक्स-रे प्लांट बेकार पड़ा है. मैं क्या कर सकता हूं." डाक्टर ने कहा.

"तुम दोजख में जाने की तैयारी करो." हैदरी बी बोली और लगी गाने :

जालिमो, असगर के होंठों का तबस्सुम देख लो
तुम नहीं हो आशना कुरआन की तफसीर से
ऐ मुसलमानो, अली अकबर को पहचानो जरा
जंग करते हो रसूल अल्ला की तस्वीर से

घड़ीसाज को लिटा दिया गया था. हैदरी की आवाज से वह फिर उठ बैठा. उसके रिश्तेदारों के बीच हैदरी यकायक किसी फकीर की तरह मकबूल हो गयी. एक आदमी ने चुपके से उसके हाथ में एक बड़ा-सा संतरों का लिफाफा थमा दिया.

"मेरे लिए ये संतरे बेकार हैं. अगर आप लोग सही मायने में मुसलमान हैं तो आज कट मरिये हस्पताल की बदइंतजामी के खिलाफ!" हैदरी ने कहा :

जालिमो, असगर के होंठों का तबस्सुम देख लो."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिगड़ता हुआ माहौल देखकर नर्स और डाक्टरों में एक नयी स्फूर्ति आ गयी. पूरा स्टाफ वाकर मियां को घेरे था. देखते-देखते वाकर मियां को ग्लूकोज लगा दिया गया. एक नर्स हैदरी को बुला ले गयी. उसे समझा दिया कि वह उसका हाथ थामे रहे. थोड़ी देर में वाकर हाथ झटकने की कोशिश करता. हैदरी कसकर हाथ थाम लेती.

यके-बाद-दीगरे वाकर को ग्लूकोज की तीन बोतलें चढ़ायी गयीं. हैदरी रात भर उसका हाथ थामे पड़ी रही. आधी रात को वाकर की एक बार आंख खुली. उसने अपने सामने हैदरी को बैठे पाया और उसके चेहरे पर एक संतोष की लकीर दाढ़ी के बीचोबीच कहीं गायब हो गयी. हैदरी रात भर जागती रही.

▣

सुबह हैदरी ने अजीजन को वार्ड में घुसते देखा तो उसकी जान में जान आयी. अजीजन ने सफेद साड़ी पहन रखी थी और वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई वाकर के पास आयी. वाकर के पास हैदरी को देखकर अजीजन को कुछ तसल्ली हुई. मगर उसने हैदरी से कोई बात न की. दोनों के बीच में एक दूरी अब भी बनी हुई थी. जो दूरी बरसों पहले एक डेरेदार तवायफ और पेशेवालियों के बीच थी. हैदरी और अजीजन ने अपनी जवानी एक ही गली में गुजारी थी मगर हैदरी की कभी हिम्मत न हुई थी कि वह अजीजन का जीना चढ़ जाती. एक बार जब सरकार ने दफा आठ की पाबंदी पर बहुत जोर दिया था और पूरी गली से सिमेंट की बोरियों की तरह तवायफें ट्रकों में भरकर ले जायी जा रही थीं तो हैदरी डरते-डरते अजीजन के यहां पहुंची थी. अजीजन का ठाठ देखकर वह स्तंभित रह गयी. बैठक में कीमती फानूस लटक रहे थे. फर्श पर बहुत बढ़िया कालीन बिछा था. दीवारों पर सुनहरे फ्रेम के बड़े-बड़े आइने लटके थे. बीच में फूलों की चंगेर थी. चांदी का पानदान था, पीकदान, इत्रदान. हैदरी को दीनता की भावना ने घेर लिया था कि वह सीढ़ियां उतर आयी थी.

मुहल्ले में एक आतंक-सा बिछ गया था. लगभग तमाम दलाल पुलिस की हिरासत में थे. छज्जे पर बैठकर कोई भी तवायफ इशारेबाजी करती पकड़ी जाती तो तुरंत थाने की हवा खानी पड़ती. तमाम तवायफों ने अपने छज्जों पर हैसियत के मुताबिक चिकें या टाट लटका लिये थे.

"बी जान, सलामो अलैकुम !" हैदरी ने स्टूल से उठते हुए कहा. और फिर नर्स की तरफ घूम गयी.

"मरीज की मिजाजपुर्सी के लिए आपने यह किसको छोड़ रखा है?" नर्स और हाउस सर्जन एक साथ बोले.

"एक मुसीबतजदः औरत है. दिल की बहुत नेक है. अपने आप चली आयी है."

"उफ!" नर्स ने कहा, "कल रात भर मातम करती रही. डाक्टरों और नर्सों को ऐसी गाली दी कि देखा-देखी पूरा वार्ड कर्बला बन गया."

"वह जज्बाजी औरत है. इससे बरदाश्त न हुआ होगा." अजीजन ने पूछा, "मरीज की कैसी तबीयत है?"

"मुझे लगता है, इसे मेडिकल कालेज में ले जाना पड़ेगा." वह न कुछ खाता है और न ही कुछ बोलता है. हमारा ए... प्लांट भी खराब पड़ा है."

"गली में तो यह रात भर चिल्लाता था."

"आप बुरा न मानें, इसका वक्त नजदीक आ गया है. ... फौरन इसे मेडिकल कालेज ले जायें. मैं डाक्टर से पर्चा लि... लाती हूं."

अजीजन चुपचाप खड़ी रही. उसकी आंखों के सामने ... बांके वाकर का चेहरा घूम गया जो महफिल की जान होता ... सारंगी के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ उसकी गर्दन बल खा... थी. तुर्की टोपी पहने वह पूरी तल्लीनता में सारंगी बजाता ... इस समय वह एक लाश की तरह बेजान पड़ा था.

"वहां भी गरीब आदमी की क्या देख-भाल होगी." अजी... बी ने जैसे अपने आपसे कहा, "एक बार मैं खुद डाक्टर से मि... लूं."

डाक्टर से मिलकर अजीजन और निराश हो गयी. ... बताया कि उसकी आंतें सड़ चुकी हैं. पेट में अल्सर है. शरीर... बिल्कुल ताकत नहीं है. उसे सिर्फ जिंदा रखा जा सकता है.

अजीजन कुछ देर वाकर के बैड के पास खड़ी रही और ... देखती रही. जैसे वर्तमान, भूत और भविष्य से एक साथ अचा... सामना हो गया हो.

"डागडर ने क्या बताया बी जान?"

"सब लोग तुम्हारी शिकायत कर रहे थे."

हैदरी ने गर्दन घुमाकर नर्स की तरफ देखा और बो... "बी जान, ये लोग डागडर नहीं भेड़िए हैं. वाकर मियां को ... देखने तक न आया. सब मरीजों का बुखार देखा जाता है, न... देखी जाती है, मगर उसके पास जब कोई न आया तो मैं आपे... बाहर हो गयी. मैंने जब लानत-मलामत भेजी, तब कहीं इन लो... ने ग्लूकोज चढ़ाया. उसके बाद वाकर मियां ने आंखें खोलीं. ... पहचाना और देर तक मुझे घूरते रहे. उसके बाद जो उन... आंखें बंद हुई, अब तक बंद हैं."

"हैदरी बी, अब डाक्टर भी कुछ न कर पायेगा. हमें ... बहुत पहले अस्पताल में भर्ती कराना चाहिए था."

कॉरीडोर से कोई लाश गुजर रही थी. लाश के पीछे-पीछे ... औरत चिल्लाती हुई जा रही थी. उसकी गोद में एक निढाल ... बच्चा था. अजीजन ने देखा तो उसका दिल बैठने लगा.

"बी जान, वाकर का इलाज होगा तो वह जरूर बच जायेगा" हैदरी ने कहा, "ये लोग शैतान हैं. गरीब पर एक भी दवा ... नहीं करना चाहते."

"अच्छा, मैं मेडिकल कालेज भेजने का इंतजाम करती ..." अजीजन ने कहा और डाक्टर के कमरे में घुस गयी. उसने डा... से पर्चा लिया, एंबुलेंस का इंतजाम किया और बाहर दरवाजे ... खड़ी होकर वाकर के लिए स्ट्रैचर का इंतजाम करने लगी.

~~~~~~~~~~~~~अगले अंक में~~~~~~~~~~~~~

मिलिये मल्लू से जिसे खुदा ने जब छत दी तो उसे जरूरत महसूस हुई एक चारपाई की

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी ज़मीन

▣ मेहरुन्निसा परवेज़

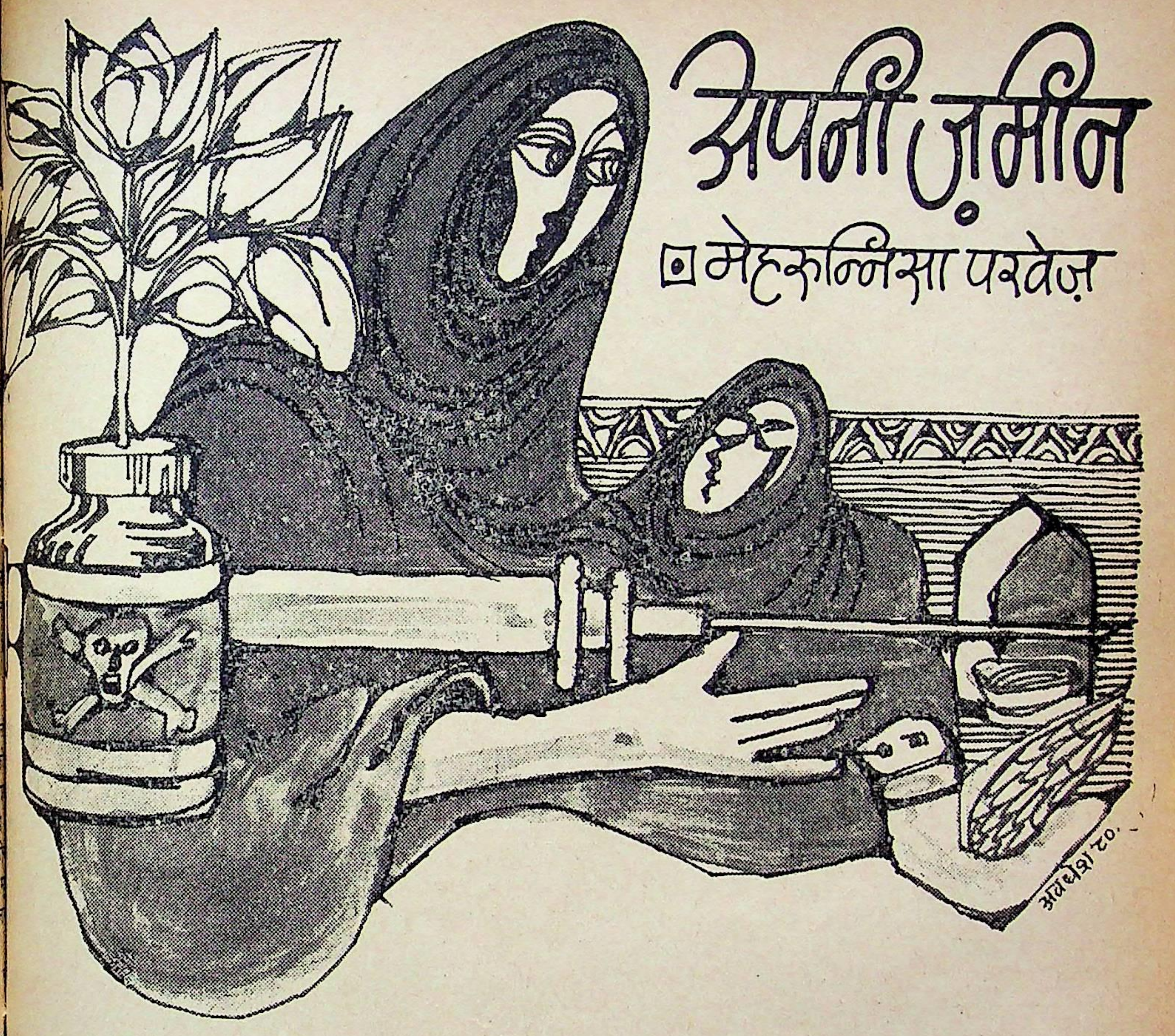

री ने हताश होकर हारी, सूनी और रो-रोकर छिली ांखों की कोर से एक बार फिर अपने मृत बेटे पर नजर ार फिर पति के दुःख से जड़ हुए चेहरे को देखा, जो पिछले ाह से भागते-भागते थक गया था और इतनी भाग-दौड़ ी बच्चा नहीं बच पाया था.

ारों लड़कियां रो-रोकर थकी-सी, सुन्न दीवार से टिकी बैठी ताल का वही चिर-परिचित वातावरण था, जो वह पिछले ाह से देखती आ रही थी. सारी हलचल वही पहचानी-सी ा का सारा काम उसी गति, उसी रफ्तार से चल रहा था, . . .इतने लोगों में किसी के मर जाने से दुनिया का काम तो ता न!

मदे में फिनाइल का पोंछा आज भी दिया जा रहा था, र साड़ियों में डाक्टरनियों का झुंड इस वार्ड से उस वार्ड हा था. सफेद मोजों में गंभीर चेहरा लिये डरावनी शक्लों े उधर तेज-तेज आ-जा रही थीं. मरीजों का वही रोज का क्रम था, कष्ट से कराहते रुदन आज भी हवा में रचे-बसे थे. अस्पताल का वही चुप सन्नाटे से भरा वातावरण था. सब ज्यूं का त्यूं था, बस इतना अंतर हो गया था कि कल तक उसकी गोद में एक खेलता बच्चा लेटा रहता था और आज वह चुप निष्प्राण पड़ा था. . .बिना हिले-डुले. आज उसकी न आवाज थी, न जिद, न कोई मांग, आज वह शांत-सा पड़ा था. उसकी आंखों पर ढकी पलकें पत्थर की तरह ठंडी और भारी हो गयी थीं.

वह जब भी बेटे को निहारती, उसका कलेजा मुंह को आता, ऐसा जान पड़ता, कलेजा मुंह के रास्ते बाहर आ जायेगा, लगता इतनी. . .इतनी जोर की आवाज के साथ रोये कि सारी दुनिया को इस छोर से उस छोर तक सुनाई दे, सबको पता चल जाये कि उसका बेटा उससे छिन गया है, पर ऐसा वह कर नहीं सकती थी. उसकी ममता से भरी सिसकियां कलेजे में घुटकर रह गयी थीं.

जब डाक्टर ने बच्चे की जांच कर नर्स से कहा था, "बच्चा मर गया है, लाश उसके घर वालों को सौंप दो, तो वह पागलों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी फटी-फटी आंखों से बच्चे को देखती भयानक आवाज में रोयी थी. कहते हैं, मां जब दुःख से रोती है, तो धरती भी हिल जाती है, पर थोड़ी देर बाद ही मुंह में आंचल ठूंसकर उसे अपनी सिसकी घोंट देनी पड़ी थी. पति ने उसे समझाया था, अस्पताल में रोना सख्त मना है.

"जनक चला गया है गोदावरी," पति ने बच्चे की लाश को दोनों हाथों से पागलों की भांति समेटते हुए कहा था.

सिसकते-कराहते वह लोग बाहर लॉन में आ बैठे थे. वह ठगी-सी सिर पीट रही थी. दुःख जब आदमी पर पड़ता है तो सहसा विश्वास नहीं होता, पर ज्यूं-ज्यूं क्षण बीतते जाते हैं, सत्य को स्वीकारना पड़ता है. अभी कल ही तो जब जनक को लेकर वह लोग शहर आये थे, तो वह बोला था, "बाबा, लौटते में लश्कर से नयी बुशर्ट ले देना." उसे जीना है वह जीयेगा, इसका उसे कितना विश्वास था. कोई सोच भी नहीं सकता था कि हंसती-खेलती एक नन्हीं-सी जिंदगी दीये की तरह अचानक धप्प-से बुझ जायेगी?

▣

"बाबा, मैं बड़ा हो जाऊंगा, तो भैंस खरीदूंगा, खूब दूध पीऊंगा और बड़ा आदमी बनूंगा," अपने बाबा की गोद में लेटा-लेटा वह आसमान से चांद निहारा करता था. उसकी नन्हीं-नन्हीं भोली-भोली बातों से सारा घर निहाल हो जाता था.

लगातार एक के बाद एक चार लड़कियों के जन्म के बाद जनक ने जन्म लिया था. उसके जन्म से कितनी प्रसन्नता हुई थी सबको. हमेशा पैर की ठोकर देकर बात करने वाली सास ने भी पहली बार अच्छे से बोला था. अपने हाथों से असली घी में हरीला बनाकर खिलाया था. लड़के के जन्म से उसे लगा था, उसके सारे कष्ट समाप्त हो गये हैं, वरना उठते-बैठते सास उसे कोसती रहती थी, उसके बेटे का धन समाप्त करने, खून चूसने कुलछनी आयी है.

चौथी बेटी के सौर के समय तो जब दाई ने सास को देहरी के बाहर झांककर कहा था, "कन्या जन्मी है," तब उसने चिरे हुए फाटक से सास का मुंह देखा था, उसके बाद फिर सास की शक्ल नहीं देखी थी. उसे घी, हरीला कुछ नहीं दिया गया था. वह खाट पर पड़ी-पड़ी किस्मत को कोसती, रोती रहती थी. लड़की के जन्म को बहुत बुरा माना जाता था. जब तीसरी छोरी हुई थी, तब सास दो दिन तक आंचल के छोर में तंबाकू बांधे घूमती रही थी कि मौका लगते ही नवजात बच्ची के तालू में तंबाकू रख देगी, तंबाकू रखते ही एक घंटे में बच्ची के प्राण निकल जाते. दाई ने उसे संकेत दे दिया था और वह अपनी बच्ची को छाती से चिपकाये, निगरानी करती रही थी. एक क्षण भी अपने से अलग नहीं किया, चौकसी में वह सारी-सारी रात बच्ची को गोद में लिये बैठी रहती थी.

बाद में हारकर सास ने अपना इरादा बदल दिया, पर उसका क्रोध गालियों में, कोसने में निकलने लगा. चूल्हे में जलती कोलती तक से वह लड़कियों को मार बैठती थी.

ऐसी दुःखों से भरी काली रात के बाद सुख की भोर हुई थी. सारे घर में हलचल थी, खुशियों का वातावरण था, ससुर ने बंदूक उठाकर हवा में चलायी थी, सारे गांव को सूचना दी थी कि उनके घर वारिस पैदा हो गया है. खुशी के मारे खुद उसकी आंख से आँसू बहने लगे थे. इत्ते-इत्ते ढेर दुःख देखने के बाद, लड़कियों की मां बनकर लानतें सहने के बाद आज उसे बेटे की मां बनने का मौका मिला था. उसके कमरे के बाहर रातभर गांव की औरतों ने ढोलक बजाकर बधाई गायी थी. खुद सास अपनी शादी का लहंगा पहनकर नाची थी, जिसे देखने सारा गांव जुट गया था. बूढ़े शरीर में यौवन की थिरकन भर गयी थी. ससुर ने बिरादरी की पात... थी और खुद सिर पर साफा बांधकर, छाती तानकर, हुक्का गुड़गुड़ाते हुए सबसे बधाई स्वीकारी थी. हमेशा बेटे की मां रहने पर गर्व करने वाली सास पहली बार बेटी के लिए रोयी थी, "मेरी बेटी होती तो उसे भतीजे को काजल लगाई में इतना... कि उसका घर भर जाता, पर मेरे भाग्य खोटे, दो बेटे ही बेटे..."

सास ने हर नेग-दस्तूर बड़े मन से किये थे. दिन, हफ्ते फिर महीनों में, फिर साल में बदल गये और नन्हां जनक सात... का हो गया. जनक सात बरस का था और सात जगह से उसके ब्याह की बात आ गयी थी. ससुर ने मूछों पर ताव देकर बात टाल दी थी, "भर नौ का होगा मोड़ा तब बात लेंगे!" पर किसे पता था होनी नाग बनकर डसने बैठी है. जनक को अचानक बुखार आया, गांव के लोगों ने कहा, इस साल आम में ज्यादा बौर आया है, इसी से बच्चों को बुखार आया है." पर धीरे-धीरे बुखार बढ़ गया. सरकारी अस्पताल के डाक्टर ने देखा तो कहा, पीलिया हो गया है. दवा-दारू, झाड़-फूंक सब करवाये, पर बुखार नहीं उतरा, आखिर डाक्टर ने हाथ टेक दिये, "ग्वालियर के बड़े अस्पताल ले जाओ और फिर आखिर बस में बैठकर शहर की ओर वह लोग चल पड़े थे.

▣

"गोदावरी, क्या सोच रही है? अब क्या करें? बच्चे का क्रियाकर्म करना पड़ेगा. मैं सुबह से चक्कर काट आया, कोई भी टैक्सी वाला लाश ले जाने को तैयार नहीं है, और जो तैयार होता है, वह पांच सौ मांगता है." पति ने हताश होकर उसे बताया.

"नहीं, मेरे बेटे को गांव ले चलो, सबको उसका मुंह दिखा... यहां परदेश में किसके सहारे करोगे मेरे बेटे को? क्या परदेश की मिट्टी ही मेरे बेटे के नसीब में है?"

"हूं, आखिर मां-बाप भी तो देख लें बेटे का मुंह," कहकर वह चुप घुटने मोड़कर उदास बैठ गये.

अस्पताल की हलचल वैसी ही थी. लड़कियां रो-रोकर निढाल पड़ी-पड़ी ऊंघ रही थीं. गोद में जनक को लिये मक्खियां आंचल से भगाती बैठी थी, आंसू थे कि रुकना ही नहीं चाहते थे और मन था जो जनक को मरा हुआ स्वीकारना नहीं चाहता था.

"सुन," अचानक पति ने उसके कंधे झकझोरे. "एक काम हो सकता है, इसे बस में ले चलते हैं, पर तू उसे जीवित बच्चे की तरह गोद में समेटे रहना, रास्ते भर रोना-धोना नहीं और रास्ते भर आंचल ढांककर इसे दूध पिलाती रहना, जरा भी शक न होने पाये, क्योंकि बस में जिंदा आदमी जाते हैं, मरे हुए नहीं. थोड़ा भी शक हुआ, तो हम सब जेल की हवा खायेंगे."

"आं, क्या कहते हो," उसने जोर से सिसकी भरी, "अब दूध पिलाऊं? मोड़ा तो रूठ गया, मेरी छाती पत्थर कर गया..."

"शांत हो जा गोदावरी, अकल से काम ले, इस तरह से लेकर गांव जा सकेंगे क्या? सोच ले, बिना जनक के लौटना..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ज्यों-ज्यों देर होगी, समस्या और विकट हो जायेगी. अभी ताजी-ताजी बात है, मेरी बात मान ले."

गोदावरी बेवकूफ-सी गूंगी बनी पति को निहारती रही, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. अभी कल ही की तो बात है, जनक को हंसाते-खिलाते, बस की खिड़की से बंदर, मंदिर दिखाते वह लोग बस से लाये थे, और आज क्या हो गया, जो छिपाकर चोरी से ले जाने की बात होने लगी. उसका बेटा जनक अब जनक नहीं रहा?

"चल, चल गोदावरी, जनक को लेकर उठ." पति ने उसे कंधे से उठाकर खड़ा किया. लड़कियों ने बाकी सामान पकड़ लिया. पति उसे सहारा देकर ले जाने लगा. गोदावरी छाती से चिपकाए अपने छौने को ले चलने लगी, उसे धूप न लगे, सो उसने उसे आंचल से ढाक लिया था. चलते-चलते जनक का पैर हिल-डुल रहा था, तो उसे लगता कि दुनिया झूठ बोलती है, बच्चा जिंदा है और उसकी छाती में मुंह गाढ़े जनक शांत नींद सो रहा है, थका सा. लंबी बीमारी ने उसे कितना कमजोर कर दिया है.

बस स्टैंड आते ही पति उससे हटकर चलने लगा, साथ ही हिदायत देने लगा, "देख, सारे रास्ते रोना मत. गोदावरी, मन को पत्थर कर ले. जनक को गांव ले जाना है."

और गोदावरी ने कलेजा पत्थर कर लिया. ममता की चीखों को, रुदन को उसने दांतों से भींचकर भीतर रोक लिया. नहीं, वह नहीं रोयेगी. उसे अपने बेटे को अपने उधर ले जाना है, वह घर जायेगा. वह मां है, और मां होकर बच्चे को परदेश में अजनबियों के हाथ सौंप जायेगी?

वह लोग बस में बैठ गये. वह पत्थर की मूर्ति बनी बैठी रही. कंडक्टर दो बार आया, "अजी गोद के बच्चे का भी टिकट लगेगा, बताओ कितने वर्ष का है."

"सो रहा है बाबू, टिकट तुम ले लो, सात वर्ष का छोरा है, पति ने फंसे गले से कहा.

"बड़ी गहरी नींद में है, जरा भी शोर से उठ नहीं रहा." कंडक्टर ने टिकट पति को थमाते हुए अपनी दरियादिली दिखायी.

"हां बाबू बड़ी. . .गहरी नींद में है, कहते पति के गले से जोर से सिसकी उठी पर फिर गले में घुटकर रह गयी.

सारे रास्ते वह चुप बनी बैठी रही. बच्चे को छाती से चिपकाए वह फटी-फटी आंखों से सामने बिछी डामर की सड़क को निहारती रही. गांव पर गांव आते रहे, लोग उतरते-चढ़ते रहे. सारे लोग उतरकर नाश्ता-पानी करते रहे, पर वह लोग तो दूसरी दुनिया के प्राणी थे, कभी भूख-प्यास लगती ही नहीं हो, ठठ बने बैठे रहे.

"अजी बच्चों का मुंह सूख रहा होगा, पानी-वानी तो पिला दो," एक यात्री ने हमदर्दी दिखायी.

"नहीं हुजूर, गरीब के बच्चे हैं, इन्हें भूख-प्यास नहीं लगती." बस फिर चल पड़ी. यात्रा इतनी कठिन हो सकती है, यह वह लोग सोच भी नहीं सकते थे.

जब बस उनके गांव में पीपल के पास रुकी तो उसका कलेजा मुंह को आने लगा. बच्चे के भार से उसकी बांह भारी हो गयी थी. पति के पीछे-पीछे वह भी उतरने लगी. पति लड़कियों को बांह पकड़कर उतारने लगा. पति ने उसे उतारने के लिए उसकी गोद से जनक को लिया. जनक को पति की बाहों में देते हुए उसे लगा कि वह एकदम हलकी-सी, तिनके-सी हो गयी है. जैसे उसका अपना कोई वजन ही नहीं हो. सारा भार तो जनक का था और पहली बार उसे लगा कि उसकी गोद सूनी हो गयी है. दुःख से उसकी छाती फटने लगी, वह एकदम नीचे उतरकर रोने लगी, उसके साथ पति, बच्चियां सब रोने लगे. बस के तथा आसपास के सारे आदमी चकित रह गये और आश्चर्य से उन्हें देखते रह गये. किसी की कुछ समझ में नहीं आया. पति जनक की लाश को दोनों बाहों में संभाले आगे चलने लगा. और उसे लगा कि बेटे को अपनी जमीन देने के सुख से वह निश्चिंत और हल्की हो उठी है. □

● 44, झांसी रोड़, ग्वालियर (म. प्र.)

आसपास बिखरी कहानियां

धरम की बात

■ विमल किशोर

अंगूरी तो बस यहीं समझती थी कि उसका आदमी कल्लू जब भी शराब पीकर आता है, उसे मारता-पीटता है. बल्कि, अब तो वह यह समझने लगी थी कि कल्लू को जब भी उसे पीटना होता है तभी वह शराब पीकर आता है, अन्यथा नहीं.

मुहल्ले में नयी आयी रामकली को यह बात कुछ अजीब-सी और आतंकित करती-सी लगी. उस दिन उसने अंगूरी के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनी तो अपनी पड़ोसन चंपा के पास गयी. चंपा ने कल्लू को एक लंबी-सी गाली देते हुए जो कुछ कहा उसका आशय रामकली को यही समझ में आया कि यह तो हमेशा ही होता है—कोई कहां तक बीच-बचाव करे. . . .और वह वहां से चली आयी, लेकिन ध्यान उसका अंगूरी की ओर ही लगा रहा.

अंगूरी चीखती-चिल्लाती बेबस कल्लू को गालियां दे रही थी, उसकी मौत भगवान से मांग रही थी. सुन-सुनकर रामकली भी चाह रही थी कि यह हत्यारा मर जाये और बेचारी की जान बचे.

चार दिन बाद महालक्ष्मी का व्रत आया. मुहल्ले की सभी स्त्रियों ने अपने पति और पुत्रों की दीर्घायु के लिए व्रत किया. रात को अंगूरी पूजा करने रामकली के घर आयी. पूजा करते समय रामकली ने लक्ष्मीजी की मूर्ति के सामने माथा टेकते हुए अपने पुत्र और पति के कल्याण एवं लंबी आयु की कामना की.

अंगूरी ने भी ऐसा ही किया तो रामकली ने आश्चर्य से पूछा, "अभी उस दिन तो तू मना रही थी कि लल्लू के कक्का अभी मर जायें और आज. . . . ."

अंगूरी ने बीच में ही टोकते हुए कहा, "ऐसी बात मत कहो बाई . . .बा और बात हती. . .जा धरम की बात है . . . .करम में बोई बदो है, धरम में जे है. . ." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं से शुरू, यहीं से अंत. . . . .पार्वती सोचती है और उसके हाथ के नोट सूखे पत्ते की तरह थरथराते हैं. . . . .जिस्म यूं कांपता है, जैसे वर्षों से शांत पड़ी नदी में किसी ने कुछ फेंक दिया हो. ऐसा ही उस दिन भी हुआ था. बी. ए. का रिजल्ट आया था. अखबार सूखे पत्ते की तरह थरथराया था. मगर दिन में जब मामा की चिट्ठी आयी कि लड़का 'आई. ए. एस.' है, फोटो देखते ही उसने हां कर दिया है. फॉरेन रिटर्न है. अपनी पारू बहुत तकदीर वाली निकली. . . . .तो मां-बाबा की खुशी का ठिकाना न रहा. उन्हें लग रहा था, जैसे जिंदगी की किसी परीक्षा में वे पहली बार बैठे और सफल हो गये. छुपकर उसने भी उस पत्र को पढ़ा था और जिस्म यूं कांपने लगा था, जैसे किसी ने वर्षों से शांत पड़ी नदी में कुछ फेंक दिया हो. . . . .यहीं से शुरू, यहीं से अंत!

शादी के दिन निकट आ रहे थे. बाबा तैयारियों में जुटे थे. मां कहती, "कुछ अपना खयाल रखा करो.". . . . बाबा हंस देते . . . . ."अपना ही तो खयाल रख रहा हूं. पारु मेरी इकलौती बेटी है. 'आई. ए. एस.' के यहां जा रही है. कमी रह गयी तो मेरी ही बदनामी होगी."

सचमुच, बाबा ने कोई कसर नहीं रखी. सर-सामान, इंतजाम-बात. बाराती बहुत प्रसन्न हुए थे. कितने खुश थे बाबा. लेकिन विदाई के दिन बाबा सुबह से दीखे नहीं. . .जाने क्या तैयारियां हो रही थीं. वह दबे पांव पूजा-घर में गयी थी. जानती थी, जब बाबा दुखी होते थे, इसी कमरे में चुपचाप बैठकर भगवान

आखिरी साँस का किराया

• रॉबिन शॉ पुष्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकटक देखा करते थे. . . .मां कह रही थी, "सब कुछ तो तुमने इतने उत्साह से किया. अब जाते वक्त बेटी को आशीर्वाद भी दे दो. . . ."

बाबा घूमे थे. चेहरा आंसुओं से भीगा था. किसी तरह कांपते स्वर में बोले, "सावित्री, याद है जब पारु इस घर में आनेवाली थी. . . .मैंने कितने उत्साह से हर कुछ जुटाया था. . . .पालना, दूध की बोतल, खिलौने. . . . फिर वह इस घर से जाने को हुई, तब भी सब कुछ जुटाया . . . . मगर आने और जाने के बीच इतना बड़ा अंतर हो सकता है, मैंने सोचा भी नहीं था. . . ." और वे एक बच्चे की तरह सिसकने लगे थे.

मां उनके एकदम करीब गयी थी. आंचल से आंसू पोछने लगी थी—"हां, जब संतान आनेवाली होती है, तो मां पीड़ा से कराहती है. . .जिसे हर कोई सुनता है, मगर जब वह जानेवाली होती है तो पिता. . .जिसके दुख को कोई समझ भी नहीं सकता. . . ऐसा क्यों होता है पारु के बापू. . . .ऐसा क्यों होता है. . . .?" और वह भी रोने लगी थी. दोनों रो रहे थे. . . . अचानक उसके हाथों की चूड़ियां बज गयीं थीं. बाबा की आंखें उठीं,फिर वे खुद ही उठकर उसके निकट आये थे—"अच्छा हुआ पारु, तूने सब देख लिया. . . इसे ही आशीर्वाद समझना और याद रखना, जब पुरुष भीड़ में रहते हुए से और घर में अपने लिए कोई एकांत जगह चुन ले, तो समझना वह कहीं से टूट रहा है. . . .ऐसे पुरुष पर क्रोध नहीं, दया करनी चाहिए." उस दिन उसने केवल सुना था, मगर अब समझ गयी है, कि बाबा ने दूसरे शब्दों में कहा था—यहीं से शुरू, यहीं से अंत!

□

फिर वह पटना आ गयी.

हर शाम सजकर पति के साथ क्लब जाती. जब दो पेग पीकर ठहाका लगाते, तो वह भीतर ही भीतर कांप जाती. . . .रात देर से वे लौटते. ऊपर का कमरा उसका अपना था. नीतू और विवेक बगल के कमरे में सोते थे. उसका बहुत मन होता था कि वह दोनों बच्चों के बीच में जाकर सो जाये. मगर वह ऐसा नहीं कर पाती. बस, एक नजर बच्चों को देखकर पति के पास आ जाया करती थी. . . . . .फिर वे उसे समेट लेते. मुंह से शराब की बदबू आती और धीरे-धीरे ये गंध उसके जिस्म में उतर जाती. वह समझ नहीं पाती, कि इस पुरुष पर क्रोध करे या दया.

सुबह विवेक शिकायत करता, "ममी तुम मेरा होम-वर्क नहीं कराती. रिजल्ट अच्छा होता है, तो रिपोर्ट देखकर पापा बस इतना कहते हैं—गुड़. बुरा होने पर बुरी तरह डांट देते हैं . . . .मैं क्या करूं ममी!" नीतू अब कुछ नहीं कहती. केवल एक बार उसने डरते-डरते कहा था—"ममी, तुम मेरे साथ क्यों नहीं सोती? . . . .बहुत डर लगता है." और वह भी तो कुछ नहीं कह सकी थी. न बच्चों से न पति से. . . .भीतर ही भीतर उसे भी कहीं कुछ भय लगता था. मगर आज उसे लगता है, जैसे सब कुछ यहीं से शुरू, यहीं से अंत!

तब बच्चे नहीं हुए थे.

हाथ में तनख्वाह पकड़ाकर उन्होंने कहा था—"इससे घर चलाना. . . .और ये रखो."

"क्या है?"

"सौ का पत्ता. . . ."

"क्यों?"

"सेवा करने की बख्शीश. . . ." और वे ठहाका लगाकर हंसने लगे थे.

वह भीतर तक कांप गयी थी. आंखों में आंसू आ गये थे.

"अरे, ये क्या हुआ?"

"अगर कभी मैं सेवा करने लायक नहीं रही तो. . . ."

"तब भी तुम्हें यह मिलता रहेगा. . . . यह पॉकेटमनी है. इसे सिर्फ अपने घर पर खर्च करना."

वह बुत की तरह खड़ी थी कि उन्होंने समेट लिया था—"वचन दो, तुम इन रुपये को न घर पर खर्च करोगी न मुझ पर. . .सिर्फ अपने-आप पर. . . .मेरी कमाई के किसी हिस्से पर तुम्हारा बहुत ही पर्सनल हक हो, यही चाहता हूं कि इन रुपयों को तुम अपना समझो."

फिर बच्चे हुए. उन्हें पॉकेटमनी देकर वे एक सौ का पत्ता उसकी तरफ बढ़ा देते—"योर पॉकेटमनी."

ऐसा हर महीने होता था. एक लंबा सिलसिला. लेकिन एक दिन, जब वे ऑफिस चले गये और बच्चे स्कूल के लिए तैयार हुए, तो विवेक आया था. उसके हाथ में नोट थे. नीतू चुपचाप खड़ी थी.

"क्या बात है विकू?"

वह चुप रहकर जैसे शब्द खोज रहा था. यकायक उसने सारे नोट फेंक दिये—"ऑफ्टरऑल आय एम योर सन . . . पापाज सन. . . कोई नौकर नहीं, कि हर महीने पॉकेटमनी के नाम पर वे हमें तनख्वाह थमा देते हैं. आई हेट दिस मनी. नीतू, तू भी फेंक दे रुपये!"

मगर वह चुप खड़ी रही.

विवेक ने उसे एक चपत मारी."तुम भी ममी की तरह स्लेव बनके रहो. . ." और वह गुस्से में दनदनाता हुआ निकल गया था. उसके पीछे-पीछे रोती हुई नीतू भी चली गयी थी.

वह ठगी-सी खड़ी रह गयी थी. देखते-देखते विवेक इतना बड़ा हो गया ! इतना कुछ सोचने और समझने लगा. और उसे पति, पार्टी और क्लब के दायरे में कुछ भी नहीं पता चला! वह अपने बिस्तर पर गिरकर फफकने लगी. . . तभी उसने देखा, बिस्तर पर कुछ नोट पड़े हैं. साथ में एक स्लिप 'विद थैंक्स टू ममी एंड पापा'—नीतू. वह नीतू की नन्हीं लिखावट को बार-बार चूमकर रोने लगी . . . मगर आज उसे लग रहा है, शायद यहीं से सब कुछ शुरू हुआ था और यहीं से अंत!

फिर उस शाम वह क्लब नहीं गयी. वे अकेले ही गये. बच्चे जब पढ़ने बैठे, तो वह उनके पास आयी—"आओ नीतू, आज तुम्हारा होमवर्क मैं करा दूं."

नीतू एकटक देखने लगी थी.

"ऐसे क्या देख रही हो?"

"आज तुम क्लब नहीं गयी ममी?"

"अब कभी नहीं जाऊंगी."

"और पार्टियों में?"

"वहां भी नहीं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूसी लघुकथा

सौ रुपये

■ ईवान बुनिन

उस समय मैं पुराने ढंग के बने एक डच होटल में ठहरा था. एक सुबह होटल के आंगन में मेरी नजर उस पर पड़ी. फिर तो मैं प्रतिदिन सुबह उसके यहां जाने लगा. बरामदे से कुछ ही दूर, मकान की उष्मापूर्ण छाया में वह एक बेंत की कुर्सी पर इत्मीनान से शरीर को ढीला करके बैठा करती. एक लंबा पीले-से चेहरे वाला और अरुचि उत्पन्न करने की सीमा तक चुंधी आंखों वाला मलयाली नौकर सफेद कैनवास की सख्त जाकेट और पतलून में सुसज्जित होकर, अपने नंगे पांवों की तलियों से कंकरों को कुचलने की आवाज करता हुआ आता. उसकी कुर्सी के पास पड़ी मेज पर एक ट्रे में पारदर्शी. हल्के सुनहरी रंग की चाय का कप रखकर बाअदब खड़ा रहता, अपने सूखे पतले बंद होंठों को बिना खोले सविनय कुछ बोलता और फिर अदब से झुककर चला जाता, और वह आधी लेटी हुई, हाथ में के ताड़ के पत्तों का पंखा धीरे-धीरे हिलाती हुई यथावत पड़ी रहती.

उसकी सुदृढ़ लेकिन नाजुक, उष्ण कटिबंध के सूर्य की गर्मी सेवन करने से कॉफी जैसा रंग धारण करने वाली काया कंधों और हाथों से लेकर वक्षस्थल तक नग्न थी. उसकी टांगें घुटनों तक खुली थीं, जांघ से कमर तक का भाग हल्के हरे रंग के कटिवस्त्र में लिपटा हुआ था. खड़ाऊं के लाल पटे में से उसके छोटे-से पांव की उंगलियों के रंगे हुए नाखून बाहर झांक रहे थे. उसके छोटे-से कान की लौ से सोने के झुमके लटक रहे थे. उसकी काली पलकें अविश्वसनीय रूप से लंबी एवं अद्भुत थीं. उन्हें झपकती देखने पर हिंदुस्तान के अनुपम फूलों पर जादूभरी अदा से मंडराती सुहावनी तितली का दृश्य बन जाता था. सौंदर्य, बुद्धिमत्ता, मूढ़ता आदि इन सबमें से कोई भी विशेषण उस पर लागू नहीं होता था. मानव सहज भाषा में उसका सीधा-सादा वर्णन करना असंभव -सा लगता था. वास्तव में ऐसा लगता था कि जैसे वह नक्षत्रलोक में से उतर आयी हो. बिना कुछ भी बोले-चाले बैठे रहना उसे सर्वाधिक रास आ गया था. तितली की सूंढ़ की भांति वह अपनी काली मखमल-सी आंखों को धीरे-धीरे उठाती-गिराती, हाथ वाले पंखे को लयपूर्वक हिलाते हुए वह बिल्कुल शांत पड़ी रहती. . . .एक सुबह रिक्शा होटल के सामने आ गया था और मैं हमेशा की तरह शहर में घूमने जाने के लिए उसमें बैठने जा ही रहा था कि बरामदे की सीढ़ियों पर वह मलयाली नौकर मिला, अदब से झुका और आहिस्ता स्वर में बोला—"सौ रुपये, साहब!" □

● अनुवाद : सुरेंद्र दोशी एवं सुनील जेरथ

नीतू एकदम उससे लिपट गयी थी, "तब तो आज हम नहीं पढ़ेंगे. . . सिर्फ अपनी ममी से बातें करेंगे.". . .और वह जबरदस्ती उसे अपने कमरे में ले आयी थी. बिस्तर पर लिटाकर ढेर सारी स्कूल की बातें बताने लगी. साल-दो साल पीछे की भी बातें. अनायास उसकी आंखें भीग गयीं. इतना कुछ बताना था नीतू को. . .और वह कभी सुन नहीं सकी. . . ! तभी विवेक पेन में स्याही भरने आया. उसने कहा, "क्यों विवेक, तुम कुछ नहीं सुनाओगे?"

"ममी, बातें तो बहुत थीं. . . मगर यकीन नहीं था कि तुम्हारे पास मेरे लिए कभी वक्त होगा. . .इसलिए कुछ याद ही नहीं रखा. . ."

और वह कमरे से बाहर चला गया.वह नीतू से लिपटकर रोने लगी थी. कहीं यहीं से तो सब कुछ शुरू नहीं हुआ था, और यहीं से अंत!

फिर समय का रंदा वर्षों के जिस्म छीलता रहा. कितना कुछ बदल गया! वे अकेले क्लब जाते रहे. . .पीकर देर से लौटते. . .नीचे कमरे में सो जाते. . .कभी लौटते ही नहीं . . .सुनने में आया कि क्लब में आनेवाली किसी महिला . . .मगर वह सुनकर चुप रहती. जिस रात नहीं लौटते, वह परेशान-सी रात भर दरवाजे तक जाती और लौट आती. . .कई बार उसने देखा, विवेक खिड़की से लगा चुपचाप सिगरेट पी रहा है. उसकी हिम्मत नहीं होती कि विवेक से सिगरेट छीन ले.

सुबह उसकी लाल आंखें देखकर वह पूछती, "रात भर सोये नहीं विकू?"

". . .सारी रात पढ़ता रहा. . ." और जब वह पलटकर पूछता—"ममी, अक्सर ही तुम्हारी आंखें भी बुरी तरह लाल रहती हैं, चलो किसी डॉक्टर को दिखा लो". . .उस क्षण उसे लगता, वह कह दे—'विकू बेटे, तेरी मां भी एक परीक्षा दे रही है. . .प्रश्न है, औरत के सामने जब चुनाव आये तो किसे चुने —पति या संतान? तू कोई उत्तर सुझायेगा बेटे. . . .'मगर वह ऐसा कुछ भी नहीं कह पायी. . .और धीरे-धीरे हर कुछ बदल गया. नीतू भी जवान हो गयी. . .परंतु एक चीज नहीं बदली—हर महीने बच्चों को पॉकेटमनी मिलते रहे. . .उसे भी सौ का पत्ता. . . .कितनी बार ट्रांसफर हुए, कितनी बार वे लौटकर पटने आये. . . मगर घर लौटकर भी जैसे कभी नहीं लौटे. . . लौटे तो सिर्फ अपने कमरे!

एक बार उसने साहस करके पूछा था, "कभी घर के लिए भी समय निकाल लिया कीजिये न. . . ."

"समय रहता ही कहां है! अपनी नौकरी देखूं, सोसायटी देखूं, कैरियर देखूं या घर?. . . . .किसी मास्टर या किरानी से ब्याह करती तो पांच बजे आकर खूंटे से बंध जाता. . . . 'आई. ए. एस.' भी चाहिए. . . . .बंगला चाहिए. . . .कार चाहिए. . . .न खुद एडवांस बन सकी न बच्चों को बनने दिया. . . .कभी विदेश जाकर देखो, बच्चे कितने इंडीपेंडेंट होकर बढ़ते हैं. . . .तुमने सब चौपट कर दिया . . ."

उसकी समझ में नहीं आया कि इस आदमी पर वह क्रोध करे या दया. और उस दिन से वह हमेशा के लिए चुप हो गयी.

फिर विवेक ने ही भाग-दौड़कर नीतू की शादी तय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...सामान जुटाता रहा. और जिस दिन विदाई थी, वह दीखा ...नहीं....जाने की सारी तैयारियां हो गयी थीं. वे बाहर खड़े ...अंतिम आशीर्वाद देने के लिए. देर हो रही थी. वे चिल्ला रहे "अरे भई, नीतू को जल्दी लाना, वरना इन लोगों की ट्रेन ...जायेगी.....दे डोंट नो द वैल्यु ऑफ टाइम...."

वह भागकर नीतू के कमरे में गयी. वहां नहीं थी. फिर पूजा-...भगवान की मूर्ति के सामने विवेक चुपचाप बैठा था. नीतू ...की. उसके पैर चौखट पर ही रुक गये...

"भैया, आशीर्वाद नहीं दोगे?"

विवेक ने चेहरा घुमाया. आंसुओं से भीगा चेहरा. उसे बाबा ...चेहरा याद आ गया.....मां के शब्द....'जब संतान आने-...होती है, तो मां पीड़ा से कराहती है....हर कोई सुनता है. ...जब वह जानेवाली होती है...तो पिता...जिसके दुख को ...नहीं समझ सकता.....ऐसा क्यों होता है?'

"बाहर पापा तो हैं आशीर्वाद देने के लिए नीतू...."

"पापा! वे तो लोगों के सामने केवल फॉर्मेल्टी निभायेंगे.... ...सकता है, दिखाने के लिए रो भी दें..... आइ हेट हिम... ...मुझे भाई का स्नेह दिया....पापा का प्यार दिया...तुम ...आशीर्वाद दो....." और वह रोने लगी थी.

विवेक ने उठकर उसे बांहों में भर लिया था—"नीतू, अपने ...की बात याद रखना.....तुम एक घर से नहीं, एक सराय ...रही हो...दोबारा इस सराय में मत लौटना ....मेरी ...लग जायेगी, तो मैं भी इस सराय को छोड़ दूंगा...."

दोनों लिपटकर रोने लगे. रोते-रोते नीतू ने कहा—"और जब तुम्हारी शादी हो जाये...तुम पापा बन जाओ, तो बच्चों को खूब प्यार करना....वाइन, वुमेन और कैरियर ...के चक्कर में उन्हें पापा की तरह नेगलेक्ट मत करना.....बहुत ...लगता है भैया.... प्रॉमिज मी भैया.....प्रॉमिज मी.... ...हो सके तो ममी को इस सराय से निकाल लेना....."

...सिसकती से फिर न कुछ देखा गया न सुना गया. वह भागकर ...कमरे में आ गयी. बिस्तर पर नोट बिखरे हैं. साथ में एक ...'विद थैंक्स टू पापा—नीतू.'.... उसे लगा, ...में रहने का सारा हिसाब नीतू भर गयी है. वह धीरे-धीरे आलमारी की तरफ बढ़ी. एक कोने में ढेर-सारे सौ-सौ के ......वह इनका क्या करे....किसे लौटाये ....कैसे ......और वह फफककर रोने लगी. जिस्म यूं कांपने ...जैसे वर्षों से शांत पड़ी नदी में किसी ने कुछ फेंक दिया हो. ......शायद यह सब आखिरी सांस के बाद का किराया ...एक दिन भरा जाना है.....शायद यहीं से एक दिन सब ...शुरू हुआ था, और यहीं से अंत.... □

...'आंगन', (सनोवर बिल्डिंग) 95, सब्जीबाग, पटना-800004

यात्रा एक वेश्या नगर की

...किसी ने कहा था, "अगर यह किसी लड़की की कब्र ...होती तो मैं रोज इस पर फूल चढ़ाया करती!"....एक रचना-...कार जब घूमने निकलता है तो क्या सोचता और करता है?—...प्रकाश्य 'प्रेमगथा अंक' में पढ़िए धुआं होती जिंदगियों का ...लघु-रिपोर्ताज—राबिन शा पुष्प के मार्मिक संस्मरण.

आसपास बिखरी कहानियां

सामाजिक-असामाजिक

■ कुलदीप जैन

दोस्तों ने मुझे बताया कि पिता ने जिस दंपती को नया किरायेदार बनाया है, ठीक नहीं हैं. मुझे यह भी बताया कि उन दोनों की शादी नहीं हुई है, बल्कि कमरा न मिल पाने की वजह से वे पति-पत्नी बनकर रह रहे हैं. एक दोस्त ने तो यहां तक दावा किया कि वह कालगर्ल है और कनाट सर्कस में अक्सर देखी जा सकती है.

मैंने पिता से कहा कि नये किरायेदार को तुरंत निकाल दें. इस पर पिता बोले, "क्यों निकाल दूं. खराब होंगे, अपने घर से. हमें तो किराये से मतलब है."

जब मैंने उनकी इस बात का विरोध किया तो वे व्यंग्य-पूर्वक बोले, "कमाता-धमाता है नहीं, ऊपर से रोब गांठता है. दो साल हो गये एम. ए. किये हुए. आखिर मेरे बूढ़े कंधों पर तुम लोग कब तक चढ़े रहोगे?" यहीं आकर मैं हार जाता हूं. जवान बहन को हाई स्कूल कराते ही बैठा लिया. अब सिलाई-कढ़ाई के स्कूल जा रही है. दो छोटे भाई अभी स्कूल जा रहे हैं. दो बहनों की शादी हो चुकी है.

एक दिन बेबी को बुलाने के बहाने मैं कथित कालगर्ल के कमरे में गया. वह और बेबी चाय पी रही थीं. मुझे देखते ही किरायेदारनी बोली, "आइए भाई साब, चाय पीजिए. नाराज हैं क्या हमसे?"

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं." मैं जबरदस्ती हंसा. मेरा दिल धक्धक् कर रहा था. जरूर ही यह कालगर्ल है.

"बेबी, तुझे अम्मा बुला रही है." मैंने क्रोधपूर्वक कहा, "बर्तन मांजकर छोड़ आयी है." यह सुनते ही, "अरे बाबा, बर्तन तो रह ही गये." कहकर बेबी बाहर निकल गयी.

चाय पीने के बाद जब मैं अपने कमरे में आया तो उस नव-विवाहिता (?) के बारे में बने विचार बदल गये थे. वह मॉडलिंग का धंधा करती है और पोस्ट ग्रेजुएट है. उसने वायदा भी किया कि उसे किसी पब्लिसिटी फर्म में 'ऐज ए क्लर्क' लगवा देगी.

शीघ्र ही मेरी बदचलनी के किस्से पूरे मोहल्ले में फैलने लगे. दोस्त मुझे रह-रहकर चिढ़ाते और कहते, "यार हमारा काम भी बनवा दे. तेरा क्या जाता है."

बिना पूर्व सूचना दिये पिता ने उस दंपती से कहा कि वे कमरा खाली कर दें. मैंने इस बात का कड़ा विरोध किया और घर छोड़ने की धमकी भी दी, लेकिन किसी बेरोजगार आदमी की आवाज में कोई दम नहीं होता.

उन लोगों ने दूसरे दिन घर खाली कर दिया. जाते-जाते उस युवती का पति बोला, "यह लो पता और कल इस फर्म में चले जाना."

उन लोगों की बदौलत आज मैं नौकरी पर हूं, पर पिता से मेरी बोलचाल बिलकुल बंद है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

छायाकार : लवलीन
रूसी सर्विस, आकाशवाणी,
पार्लियामेंट स्ट्रीट, नयी दिल्ली-1

मेक-अपहीन तस्वीरें

'सारिका' 16 मई, 1980 के अंक में लवलीन ने अपने इंटरव्यू में कहा था, "आज मैं बहुत नीची धरती का हिस्सा हूं, पर मेरा विश्वास उस क्षितिज में है, जहां धरती और आसमान मिलते हैं." लवलीन के ये शब्द उनकी फोटोग्राफी की प्रदर्शनी देखते हुए दिमाग पर हावी रहे और दृष्टि आकर अटक गयी उस चित्र पर, जिसमें जिंदगी का एक लंगड़ा टुकड़ा कार की बोनट पर आकर अटक गया है. क्षितिज वहां बेरंग था, बेहद काला; लेकिन रोशनी ने उसके बीच से जितना भी कुछ उभारा वह देखने वाले को जिंदगी से जोड़ देने के लिए काफी था. जिजीविषा आदमी को क्षितिज से भी ऊपर उठा देती है.

लवलीन को लोग फिल्म अभिनेत्री के रूप में भी जानते हैं, प्रसारण की एक दक्ष कलाकार के रूप में भी, लेकिन शुक्रिया इब्राहीम अल्काजी को कि उन्होंने लवलीन की कैमरा-कला को पिछले दिनों त्रिवेणी कला संगम, दिल्ली की कलादीर्घा में देखने को सुलभ कराया. विश्वास करना मुश्किल था कि प्रदर्शनी के सारे चित्र सिर्फ दो सप्ताह की मेहनत का नतीजा हैं.

इन चित्रों में से किसी एक के प्रति आपका विशेष लगाव हो सकता है, वह कौन सा चित्र है? इस प्रश्न पर लवलीन अपनी मुस्कराती आंखों से हंसी के छल्ले छोड़ती हुई बोलीं, "क्या कहूं, ये सभी मेरी रचना हैं. और मैं जिंदगी को वह जैसी है वैसी ही पकड़ने में विश्वास करती हूं."

इसके लिए आपने फोटोग्राफी का ककहरा कब से सीखना शुरू किया था?

"पिछले चार-पांच साल से."

रघु की सोहबत में?

"हो सकता है, लेकिन रघु मेरे लिए, मेरी आंख से जिंदगी तो नहीं देख सकते!"

रघुराय की तरह आपकी निगाह में भी संसार का श्रेष्ठतम फोटोग्राफर कार्टेब्रेसां होना चाहिए?

"जी हां, बेशक! इसलिए कि ब्रेसां जिंदगी को उसके समूचे रूपों में बिना किसी ड्रामा के, बेहद ईमानदारी के साथ, बिल्कुल सीधे-सीधे पेश करता है."

फिल्मों से क्यों भागीं?

"भागी कहां! सत्यू की फिल्म 'दुष्काल' अभी-अभी पूरी करके आयी हूं."

यह तो व्यावसायिक फिल्म नहीं हो... फिल्मी सफलता तो व्यावसायिक सफ... से आंकी जाती है.

"आप मुझे असफल कह लीजिए ... मैं व्यावसायिक फिल्मों में काम ... पसंद नहीं करती. एक मजेदार ... भी बताऊं? सिर्फ एक! मैं तीन ... एक जगह बैठ नहीं सकती और ... इसके बिना काम चल नहीं सक... दूसरा भी सुनिएगा? मैं मेक-अप...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

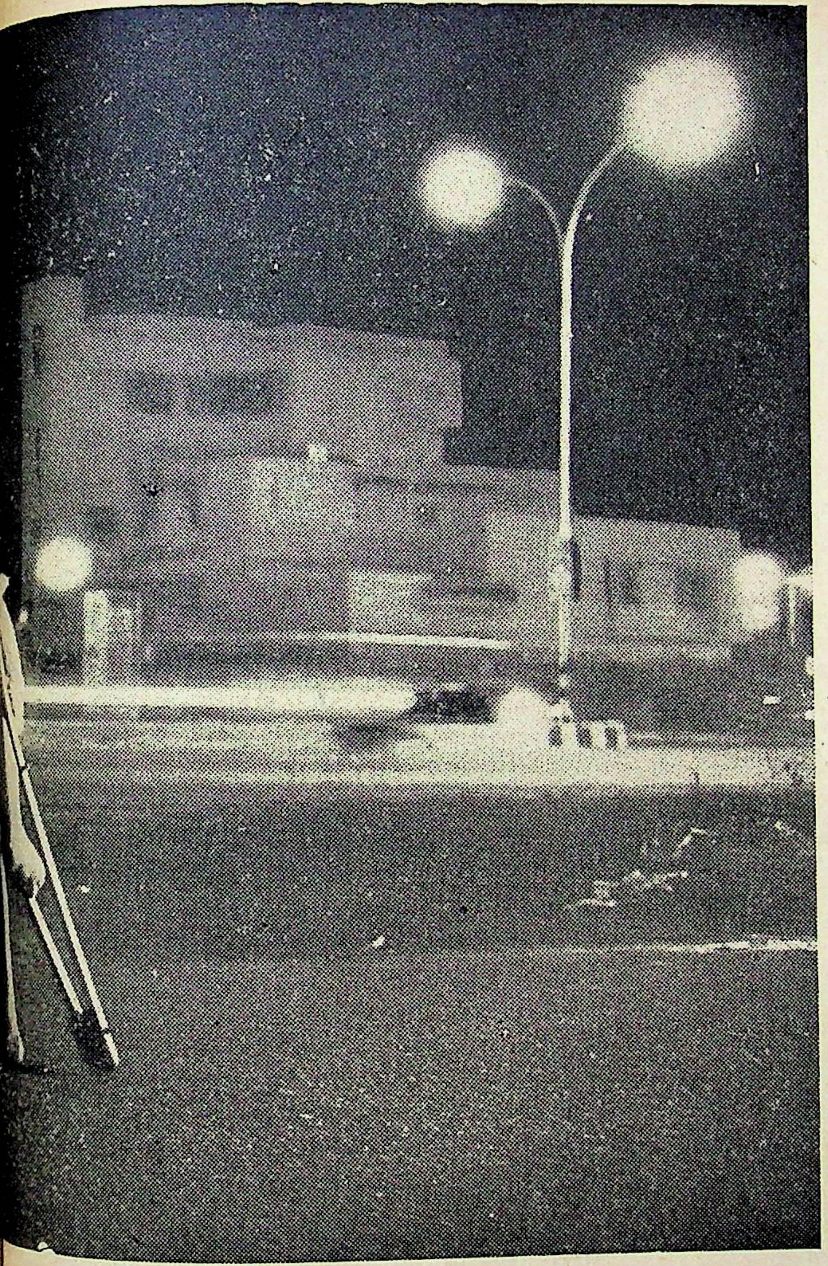

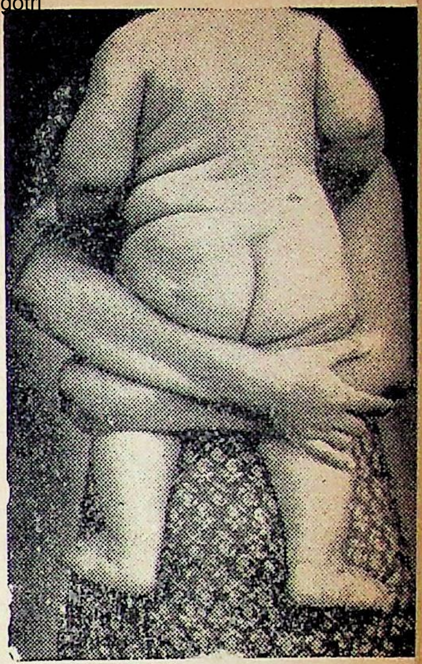

● लवलीन

पसंद नहीं करती. न जिंदगी में न तस्वीरों में. देख रहे हैं आप, मेरी तस्वीरें मेक-अप नहीं पहनतीं.

अभिव्यक्ति की इस नयी विधा को पकड़ कर छोड़ कब देंगी?

"पकड़ा है नहीं, तो छोड़ना कैसा; लेखन, प्रसारण, अभिनय, फोटोग्राफी . . . ये सब मेरे वजूद का, रूह का हिस्सा हो गये हैं, यहां इस गैलरी में अपनी रूह के इन हिस्सों के बीच बैठना, इन तस्वीरों के बीच . . . अपने-आप में मेरा एक नया अनुभव है. और यह अनुभव फोटोग्राफी से थोड़ा विमुख होकर भी अपने से अलग नहीं किया जा सकता."

अपने समकालीनों की तस्वीरें देखती ही होंगी, कैसी लगती हैं उनमें से . . .?

"आप शैतानी करके मुझसे कुछ का कुछ उगलवाने की कोशिश कर रहे हैं और मैं अपनी तस्वीरों का हिस्सा बन कर बैठी हूं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

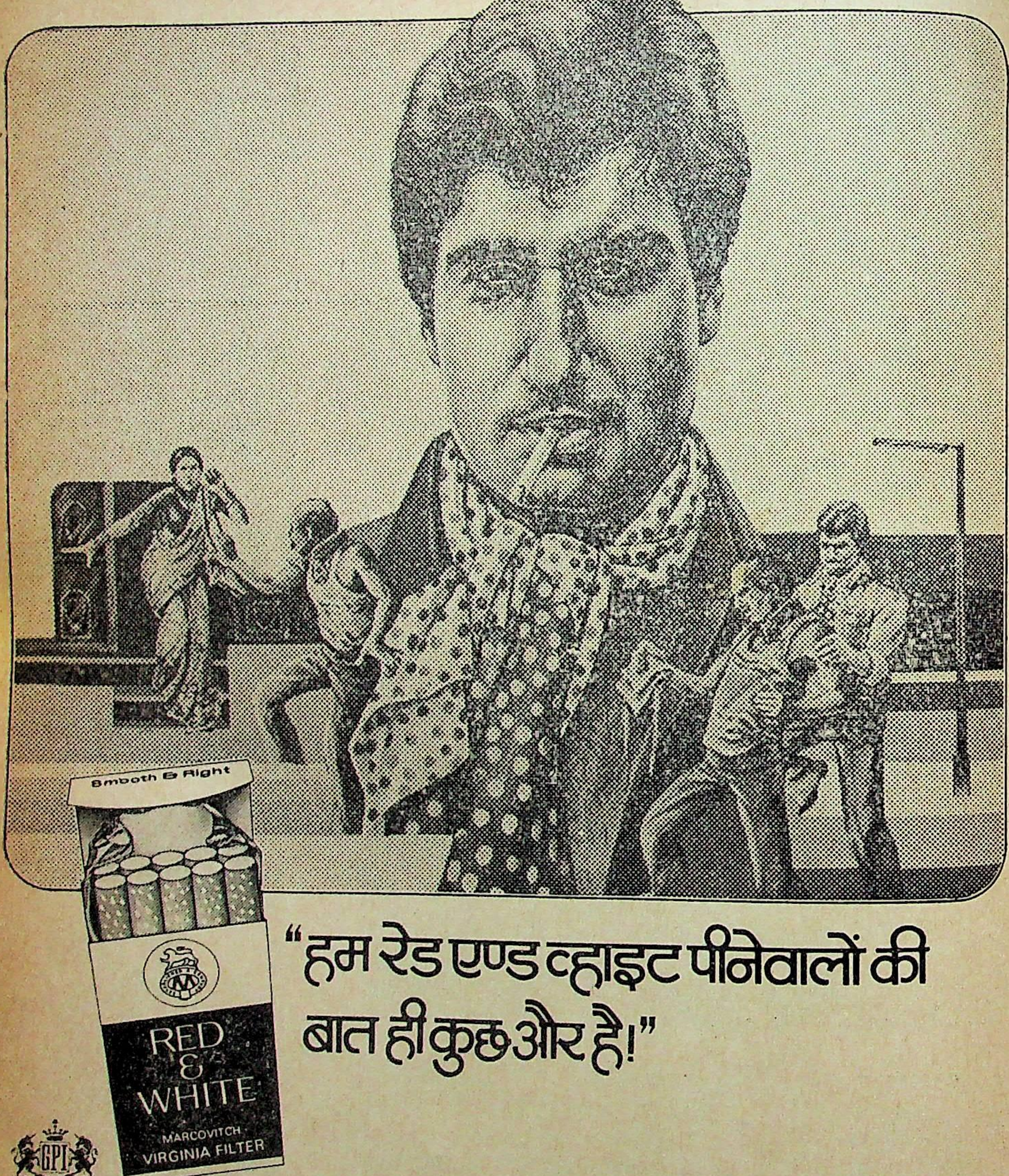

"हम रेड एण्ड व्हाइट पीनेवालों की बात ही कुछ और है!"

GPI
गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड

वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1142d HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांव की कहानी : परिचर्चा-परीचर्चा

अजित कुमार

लेखिकाओं की खासी भरमार के बावजूद ग्रामजीवन की चितेरी कोई बांधवी हिंदी में नजर क्यों नहीं आ रही? पुरुष कथाकारों ने इस क्षेत्र को अपने लिए विशेष रूप से सुरक्षित क्यों रख छोड़ा है? ग्राम कथा के संदर्भ में प्रेमचंद की परंपरा की स्थिति क्या है और इस लेखन की उपलब्धियां और संभावनाएं क्या है? ये तथा ऐसे ही तमाम सवाल लेकर प्रस्तुत हैं अजित कुमार. पिछले अंक में 'कुरु-कुरु स्वाहा' के लेखक मनोहरश्याम जोशी से हुई इनकी लिखा-पढ़ी का आनंद आप ले चुके हैं.

...येकता की जो प्रवृत्ति पिछले दिनों हिंदी कहानी में बढ़ती गयी, उसके ...न ये सवाल तो उठने ही थे कि हमारे ...कों ने मुख्य या गौण रूप से ग्रामीण ...श का चित्रण क्यों किया? गांव से ... विषय क्या चुक गये या फिर महा...र में रहने के कारण लेखकों की ग्रामीण ...दना पर से पकड़ छूटती जा रही है ... ग्राम-कथा के प्रति पाठकों की रुचि ... हो गयी है? गांव और अंचल में क्या ...र है? ग्राम-कथा के संदर्भ में प्रेमचंद ...परंपरा की स्थिति क्या है? इस लेखन ...उपलब्धियां और संभावनाएं क्या हैं? ...इस तरह के प्रश्नों का ठीक-ठीक और ...कायदा उत्तर तो ग्राम-जीवन के चितेरे ...कार बंधु ही दे सकेंगे, शायद इसका ... कि लेखिकाओं की खासी भरमार के ...वजूद ग्राम-जीवन की चितेरी कोई ...वी हमें नजर क्यों नहीं आ रही? ... कथाकारों ने इस क्षेत्र को अपने लिए ...ष रूप से सुरक्षित क्यों रख छोड़ा है?

बहरहाल, जहां तक मेरा संबंध है, महा...र में बिछुड़ी कविता को खोजने के ...न प्रायः 'परिचर्चाओं' में अटके-... मुझ जैसे व्यक्ति मामले को और ...झा देने के सिवा कर भी क्या पायेंगे. ...वे यह दुराशा जरूर कर सकते हैं कि ... का खूब उलझ जाना ही उसके ...झने की शुरुआत होगी. उलझन या ...ाव की इसी प्रक्रिया में, अनुमान ...या मैंने कि भाग्यशाली हैं वे लेखक, ... अपनी धरती और जड़ों से अंतरंग ... में जुड़े हुए हैं. उनसे कुछ कम भाग्य-... वे हैं, जो नगरों-महानगरों में ... हुए भी तीज-त्योहार-छुट्टी पर गांव ...थ सजीव संपर्क बनाये रखते हैं. ...नीय स्थिति है—उन लेखकों की, जो ... के होकर भी उसे नहीं जी पाये और ...नगर में रहकर भी उससे नहीं जुड़ ... बल्कि, ऐसों की तुलना में, वे लेखक मजे में हैं, जो या तो नगर के रंग में रंग गये या फिर पले-बढ़े ही इस परिवेश में.

इस तरह अपनी ओर से बना दी मैंने लेखकों की चार-पांच श्रेणियां और उनके सौभाग्य-दुर्भाग्य का भी निबटारा कर दिया. फिर यह सोच कर संतुष्ट हुआ कि तनिक हेर-फेर और जोड़-तोड़कर उनकी संख्या और मनोदशा में काफी बढ़ोतरी की जा सकती है.

विषय के यहां कुछ और पहलू भी हैं. मसलन यह है कि जिस तरह हिंदी में बहुत कुछ बस चल पड़ता है, उसी तरह गंवई, गांव, ग्राम, ग्राम्य, ग्रामीय ग्रामीण, गंवारू, भदेश, ग्रामगंधी, ग्रामांचली जैसे तमाम शब्द सामान्यतः एक ही भाव को व्यंजित करने वाले समझे जाने लगे हैं. आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में ही किया जाये, लेकिन अर्थछायाओं के बीच अंतर की प्रतीति होनी ही चाहिए. उदाहरण के लिए अंग्रेजी के दो शब्द 'रूरल' और 'बलगर' ले लें. बहुत समय तक उनके लिए एक 'ग्रामीण' शब्द से काम चलाया गया. अब कहीं-कहीं 'ग्रामीय' का प्रयोग 'रूरल' के लिए होने लगा है. बहरहाल, भारत के गांवों की सामान्य दशा को देखते हुए 'ग्राम्य', 'ग्रामीण', 'गंवारू' या 'भदेश' का एक ही अर्थ—'कुत्सित' लगाना भले ही सामंती और औपनिवेशिक अवशेष माना जाये, तो भी यह खतरा बराबर मौजूद है कि शहरी नव-धनाढ्य वर्ग में पनप रही 'पॉप-कल्चर' गांव को उपेक्षा-तिरस्कर की दृष्टि से देखते हुए भी, उसको ऊपरी सजावट या दिखावे का स्रोत मान ले. नयी दिल्ली के प्रदर्शनी-स्थल में भारत के गांवों-झोंपड़ों की झांकी प्रस्तुत करने वाला 'रूरल कांप्लेक्स' नामक मंडप मनोमुग्ध-कारी तो होता ही है, आयोजकों की 'ग्राम-कुंठा' का भी परिचय देता है. इतना ही नहीं, गांवों के प्रति रोमानी कल्पना उन तमाम एयरकंडीशंड होटलों, दूकानों और ड्राइंगरूमों द्वारा पनपायी जाती है, जहां ग्राम-शिल्प, हस्तशिल्प आदि का चमकीला उपयोग दिखता है. इन जगहों में व्याप्त स्राव-वैभव को गंवई टोकरी, सूप, मोढ़ा, चटाई, मटका, छप्पर आदि अपने लोक-संस्पर्श से और भी अधिक भव्य, अपूर्व, अनुपम बना देते हैं.

मतलब यह है कि एक ओर तो शाही, संभ्रांत, शिक्षित, संपन्न वर्ग ने राजस्थानी

● अजित कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पड़', मधुबनी आदि के नमूने दीवार पर टांगकर अपने आप को सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कृत जताते हुए गांव और उसकी जिंदगी से कट जाने की, पूरी तरह 'इनसुलेट' हो जाने की, प्रवृत्ति बढ़ रही है और दूसरी ओर हमारे लेखकों के बीच अंचल, गांव, कस्बा, नगर, महानगर की कथाओं को लेकर खींचतान मची हुई है. इन दोनों धंधों में बड़ी दूर तक समानता दिखती है और इनका खास मकसद भी नजर आता है; मकसद भले ही कुछ कम हो याकि उलझा हुआ हो.

एक मकसद तो है—गांव को अनोखी, नायाब चीज बनाकर पारखियों के सामने पेश करने वाली 'क्यूरियो वृत्ति,' जा हायर मध्य वर्ग की उच्चाकांक्षा का पर्याय बनती गयी है. इसके अलावा यह खयाल भी मौजूद है कि गांव की कहानी तत्वतः प्रेम, दाम्पत्य अथवा नगर की कहानी से भिन्न और विशिष्ट होती है. यह भी कि वामपंथी समझ से युक्त लेखक के लिए जरूरी है कि वह गांव को अपनी रचना के केंद्र में रखे.

इन दबावों के कारण, बहुधा ग्राम-जीवन से संबद्ध कथायें आत्मसजग और सचेष्ट ही नहीं, आलोचकी भाव, दुरूह और अपढ़नीय भी हो गयी हैं. यदि हम लमही से जुड़कर लिखने वाले प्रेमचंद (और गढ़ाकोला-डलमऊ में रमे निराला) की रचनाओं के उस गुण को याद करें, जिसे डा. रामविलास शर्मा ने 'लोक-रस' कहा है और जो 'यहां की धरती की सुगंध, यहां की हवा की ताजगी और महक' से युक्त है तो अंतर और भी स्पष्ट हो जायेगा.

इस संबंध में समकालीन कथाकारों की दो अन्य मनोदशाएं भी विचारणीय हैं. कुछ शिक्षित, प्रबुद्ध, संभ्रांत लेखकों ने यह समझा था कि उनकी जागरूकता और जादूभरी लेखनी गांव का समूचा अंधकार मिटाकर उसे नवचेतना से आलोकित कर देगी. उनका यह भ्रम टूटने पर आंख चुराने या भाग खड़े होने की अनिवार्यता सामने आयी. डा. विवेकी राय ने 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और ग्राम-जीवन' के दूसरे परिशिष्ट में इसका सटीक वर्णन किया है. "स्वतंत्रता के बाद आयी आंचलिकता की लहर के बाद पुनः हिंदी कथा-साहित्य में ग्राम-जीवन की उपेक्षा का एक जबरदस्त दौर आया. . .गांव की पीड़ा में क्या हैं? आजादी के पश्चात दशक पर दशक बीतते गये और बावजूद विकासी प्रयत्न के गांव टूटते गये. वे नरक होते गये. . . गांव के जड़, अंधपरंपरिक और गंवारनीतिक धक्का से उसके हितचेतकों का भाग खड़ा होना एक रोमांचक सत्य है."

कहने की जरूरत नहीं कि ये 'हित-चेतक कथा-नायक, लेखक या पाठक —कोई भी हो सकते हैं. इसे 'विमुखता' भी समझा जा सकता है, लेकिन आशा करनी चाहिए कि उत्साह और हताशा के अतिवादों से मुक्त होने पर जन-जीवन से संलग्नता और प्रतिबद्धता का मान बढ़ने के साथ-साथ उन्मुखता भी गहरी और पूरी होती जायेगी. तब शायद यह बात भी स्पष्ट हो सके कि वृहत्तर सामाजिक वास्तविकता से काटकर 'गांव' को एक द्वीप बनाने की कोई खास जरूरत नहीं है.

■

बड़े सुंदर शब्द हैं—'ग्रामात्मा', 'ग्रामांचली', 'ग्रामभित्तिक', 'ग्रामगंधी' आदि. शोध सूचना, संदर्भ विशेषज्ञता आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कथा-साहित्य में इस आत्मा, भित्ति या गंध की खोज बेशक होनी चाहिए (इच्छा हो, काव्य में भी इन्हें तलाशा जाये) लेकिन भारत में एक भी राजधानी ऐसी नहीं है, जो शिकागो-न्यूयार्क से होड़ ले सके. हम भले ही गौरांगप्रभुओं की लाड़ली दिल्ली को एक बड़ा गांव न कहें, इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि यहां बाकायदा घोषित और सुरक्षित बीसों गांव महानगर की परिधि के भीतर मौजूद हैं. यही नहीं, प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों लोग कस्बों-गांवों से आकर यहां बस रहे हैं. गांव यदि शहर बन रहे हैं तो शहर भी गांव होते जा रहे हैं. विभाजक-रेखाएं सब की सब गड्डमड्ड हैं. मोह और मोहभंग, सहजता और कुंठा, लघुता और विशालता वाला अंतर अब नहीं किया जा सकता. युवा-विद्रोह, नंगई, परोपजीविता, पीढ़ियों का संघर्ष, गुटबंदी, उत्कोचवृत्ति, असुरक्षा, संस्थाजीविता, अस्वस्थ नेतृत्व, विघटन और हुल्लड़बाजी जहां एक नये जीवन-मूल्य के रूप में पनप रही हैं. उसे ... जल्दबाजी में भले ही 'नगर' कह दें, ... विवेकीराय ने उनका उल्लेख 'गांव' ... संदर्भ में किया है. उन्होंने वहां 'व्याप... आक्रोश और तीखा विक्षोभ' भी पा... है. 'गांव की कहानी न होकर स्वदेश-गाथा ... का समकालीन आलेखन'—यह किसी ... अच्छी रचना का मानदंड हो सकता है ... श्री विवेकी राय का यह निष्कर्ष विचारणीय ... है कि "ग्रामात्मा को विश्वात्मा से जोड़कर ... यदि नहीं अंकित किया गया तो कृति का ... स्थायित्व संदिग्ध होगा."

■

यहां 'गोदान' से जुड़ी वह बहस या... आती है कि 'उपन्यास में गांव का चित्र... जितना प्रामाणिक है, उतना शहर और ... शहरियों का नहीं.' इसका समाधान कति... लेखकों ने इस तरह किया कि अपने लि... छोटे-बड़े अंचल, गांव, कस्बे, शहर च... लिये. बेशक इसके पीछे भोगे हुए यथा... ईमानदारी, गहरायी और प्रामाणिकता के ... तकाजे भी रहे हैं, बहुत-कुछ श्रेष्ठ और ... गंभीर लेखन भी इस नाते संभव हुआ है ... लेकिन 'ग्रामांचल' से 'गगनांचल' तक के ... के जो अनेक कटघरे हिंदी में खड़े कर ... दिये गये हैं, उनके मूल में सृजनात्मक ... उद्देश्यों से कहीं अधिक वे उद्देश्य नजर आते ... हैं, जिन्हें (बेहतर नाम के अभाव में) ... आलोचना, व्यवसाय, प्रतिष्ठा, राजनीति ... खेमा, सरलीकरण आदि के आसपास ... जा सकता है. सृजनात्मक प्रयोजन तो ... इन सब में भी मिल जायेंगे, तथापि 'गोदान' ... को समग्र, समन्वित संरचना मानने ... जगह उसे खंडित, विभाजित करने ... कोई खास जरूरत नहीं दिखायी दे...

यही बात साहित्यिक विधाओं के ... में भी कही जा सकती है. कविता और ... कहानी का विभाजन बहुधा आंतरिक ... अनिवार्यता से नहीं, व्यावहारिक प्रयोजन ... से प्रतीत होता है. इसे स्पष्ट करने के लिए ... मैं अपने कविता-संग्रह 'ये फूल नहीं' की ... भूमिका से कुछ पंक्तियां उद्धृत करना ... चाहूंगा.

"इस देश के औसत शिक्षित लोगों की ... ही तरह मैं भी गांव से कस्बे, कस्बे से शहर ... शहर से बड़े शहर में पहुंचा और पि... बीस सालों से लगातार वापस गांव ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सपने देखता, झींखता, गुर्राता, आखिर-
र बड़े शहर में ही मरूंगा. बीच में जब
अपना या और कोई गांव देखा, मेरा
ता टूटता गया, पर कुछ तो होगा कि
ज भी चारों ओर की टूटन के बावजूद,
में अपने बचपन के गांव-गलियारे,
र-अमराई, कोल्हू, घाट, तोराई के
ही विशेष रूप से अंकित हैं, मूसलाधार
में कच्ची कोठरी की आधी ढही छत
नीचे शरण की भांति. एक बचपना ही
शायद यह चाहना कि हम बचपन में ही
रहें. यह एक तरह से अधर में उलटे
के रहना था. इस संग्रह की अधिकांश
विताएं इस स्थिति के स्वीकार और
जन्य पीड़ा की कविताएं हैं. पीड़ा एक
ड़ा शब्द है. उसे वापस ले, सुधार कर कहूं:
टपटाते-छटपटाते क्रमशः शांत पड़ जाने
की कविताएं. एक समूची दुनिया के, मेरी
नी ही दुनिया के—बनने के ही क्रम में,
ट जाने की कविताएं.

मगंधी' कथाओं में विद्यमान सीलन-
री मोहगंध या 'नास्टैल्जिया' पर ध्यान
तो यह वक्तव्य मेरी कविताओं से आगे
बहुतेरी 'गांव की कहानियों' पर भी
गू हो जायेगी. बहरहाल, मैंने इसे दस
पहले लिखा था. तब तक 'हरित क्रांति'
सपना साकार न हुआ था और मैं भी
सा कच्चा था. आज नवें दशक और
गे नवीन शताब्दी की प्रतीक्षा करते
मय आशा करनी चाहिए कि 'मिटने
क्रम में बन जाने की प्रक्रिया' को हम
चान लेंगे और अपनी कथाओं में यहां
धरती की सुगंध, यहां की हवा की
गी और महक बार-बार पायेंगे. □

हम कहें गांव की गाथा

'सारिका' के प्रेमचंद विशेषांक में ग्रामजीवन की समकालीन स्थितियों पर शिवसागर मिश्र की रिपोर्ताज कथा 'हम कहें गांव की गाथा' आप पढ़ चुके हैं. अगले अंक में पढ़िए शिवसागर मिश्र की एक और रिपोर्ताज कथा.

लघुकथा

सीढ़ियां

▣ प्रियंवद

मैंने जिंदगी को तीन बार निचोड़ा और मुझे तीन चीजें मिलीं. पहले सपने, फिर आंसू और फिर गीत.

बहुत पहले मैंने खरगोश के बच्चों के सफेद मुलायम जिस्म में मुंह दुबकाकर पूछा, "मैं कौन हूं?"

"मांस का लोथड़ा." सफेद बच्चे की आंखें टिमटिमायीं.

"मैं कौन हूं?" मैंने खिड़की के कांच से चिपके सुर्ख गुलाब से पूछा...

"मांस का लोथड़ा." गुलाब की इक्कीसों पंखुरियां फड़फड़ायीं.

"मैं कौन हूं?" मैंने मरते हुए सूरज, उगते हुए चांद से पूछा.

"मांस का लोथड़ा." उदास शाम और पीली बीमार चांदनी फुसफुसायी.

"मैं कौन हूं?" मैंने उससे पूछा.

"मेरी आत्मा." उसने मेरे गले का बायां हिस्सा चूम लिया. मैंने तब जिंदगी को निचोड़ा तो उसमें से सिर्फ सपने निकले, रंगबिरंगे सपने, एक के साथ एक गुंथे हुए. वह सपने मेरे पूरे बदन में फैलते गये, किसी बोगनवेलिया की तरह.

जिंदगी में सपना ही सत्य है, मैं सोचने लगा.

"तुम्हारे एक गाल में धूप और दूसरे में चांदनी है." मैं उससे कहता और एक सपना अपनी हथेली से उतारकर उसके गालों पर टांक देता. वह खिलखिलाती, "और..."

"तुम्हारे बाल उस राजकुमारी की तरह हैं, जिसे राक्षस कैद कर लेता है." मैं एक सपना उसके बालों में गूंथ देता.

"और..." उसकी आंखें पागल हो जातीं.

फिर सपने के बाद सपने से मैं उसको ढंक देता, उसके होंठ, उसकी उंगलियों की पोरें, उसके पंजे तक.

एक दिन उसने पूछा, "अगर मैं जाऊं तो क्या करोगे?"

"तुम्हारे दोनों पांव काट लूंगा."

"काट लो." उसने अपने पांव बढ़ा दिये.

"मैं सारी रात उसके पांवों पर सिर रखकर रोता रहा. मैंने तब जिंदगी को निचोड़ा तो उससे में सिर्फ आंसू निकले. एक के बाद और, फिर और आंसू. ये आंसू मेरे पूरे बदन में फैल गये, किसी गुलमोहर के गुच्छे की तरह.

जिंदगी में आंसू ही सत्य हैं, मैं सोचने लगा.

आंसुओं का दरिया चढ़ता रहा और मैं उसमें डूबता गया. मैंने तब जिंदगी को निचोड़ा तो उसमें से सिर्फ गीत निकले. वह गीत मेरे पूरे बदन में फैलते चले गये, हल्दिया अमलतास की तरह.

जिंदगी में गीत ही सत्य है, मैं अब सोचता हूं, लेकिन सच तो न सिर्फ सपना है न सिर्फ आंसू और न सिर्फ गीत. सच है एक सिलसिला. पहले सपने, फिर आंसू, और फिर गीत का शाश्वत अपराजेय सिलसिला. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

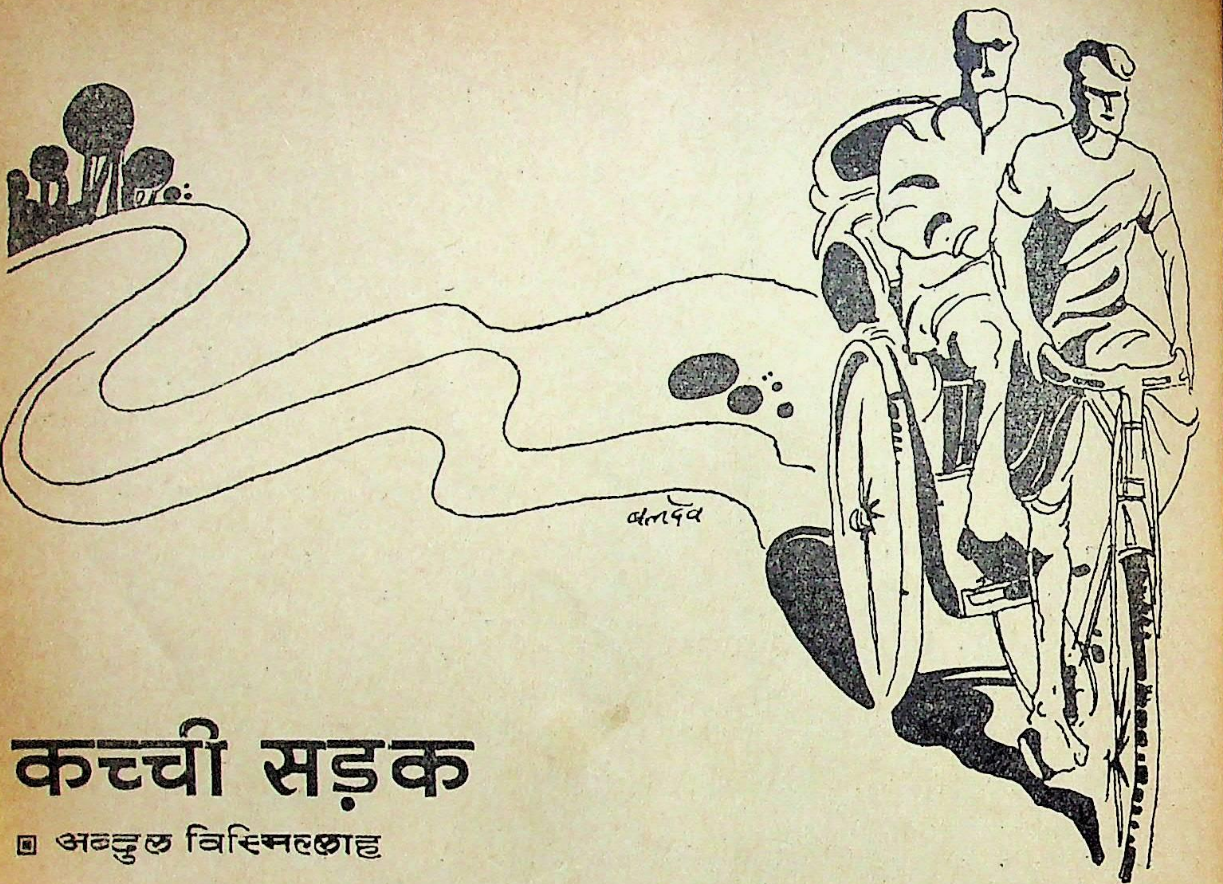

कच्ची सड़क

■ अब्दुल बिस्मिल्लाह

सायकिल यकबयक चिंचियाकर खड़ी हो गयी. उसने बार-बार पायडिल घुमाने की कोशिश की, पर सारा श्रम व्यर्थ गया. तब वह कैरियर पकड़कर पिछला पहिया उठाये आगे वाली दूकान की ओर बढ़ गया, जहां सायकिलों की मरम्मत होती थी. वहां पहुंचकर उसने सायकिल पटक दी.

"देखो भाई, इसमें क्या गड़बड़ी हो गयी है?" उसने मरम्मत करने वाले व्यक्ति से यह वाक्य इस अंदाज में कहा, मानो गड़बड़ होने का सारा कसूर सायकिल का ही है.

मरम्मत करने वाला व्यक्ति उसकी बातों पर ध्यान दिये बगैर सामने पड़ी दूसरी सायकिल का पंक्चर ठीक करने के लिए रबर के एक टुकड़े पर सरेस घिसता रहा और बीच-बीच में अपनी पत्नी की बातों पर हूं-हां करता रहा. उसकी पत्नी एक अधेड़ औरत थी, जो अपने छ:-सात बच्चों से घिरी वहीं मुनगे के पेड़ के नीचे बैठी थी और अंतिम बच्चे को छाती खोले दूध पिलाती हुई रिश्तेदारों के यहां से आये विवाह के निमंत्रण-पत्रों के संबंध में चिंता व्यक्त कर रही थी कि हर रिश्तेदार के यहां एक-एक आदमी जायेगा तो भी पूरा नहीं पड़ेगा.

उस औरत की बातों से और आदमी की उदासीनता से प्रायः ऊबकर उसने एक बार फिर गिड़गिड़ाने की चेष्टा की, "अरे भाई, मेरी भी सायकिल देख लो न, शाम हो रही है, अभी दूर जाना है."

"बैठ जाइए, देखते हैं." सायकिल वाले ने राजसी ठाठ के साथ उस पर अब ध्यान दिया था और तसले में भरे काले पानी में हाथ धो रहा था.

वह वहीं बिछी झिलगी-सी बंसखट पर लुढ़क गया था. "कौन कटोरिया बिल्कुल खराब हुई गया है, काहे न जाम हो."

मरम्मत करने वाला व्यक्ति बुदबुदाया, पर उसने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया. वह सिर के नीचे दोनों हाथ लगाये बंसखट पर लेटे-लेटे सामने पक्की सड़क से निकलने वाली कच्ची सड़क को देखता रहा, जो जगह-जगह कटी-फटी, धूल का द बनी, उखड़ी-पुखड़ी एक मुद्दत से इसी त पड़ी है और वह रोज उसी सड़क सायकिल चलाकर यहां से घर तक ज है और घर से यहां तक आता है.

"आजादी के बाद का हर भार नवयुवक एक कच्ची सड़क है." अचा ही यह जुमला उसके होंठों पर आ जात और वह मन मसोसकर रह जाता है. इस वक्त वह दोस्तों की महफिल में हो तो इस पर कितनी वाहवाहियां लूट ले

"वाह! क्या बात कही है गुलशन कोई दोस्त चीखता और आजादी के की तमाम परिस्थितियों पर जोर- बहसें शुरू हो जातीं.

कितने अच्छे दिन थे, जब वह स्टूडेंट की जिंदगी जी रहा था. . . .और याद आते हैं वे दिन, जब वह हाई स्कू था और उसे 'विद्यार्थी जीवन' पर लि लिखना था. मास्टर साहब ने कैसी अ लाइंस दी थीं. उन्हीं में एक यह वाक्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, "आज का विद्यार्थी कल का राष्ट्र-निर्माता है."

उसके होंठों पर एक क्रूर मुस्कान तैर जाती है और आंखों में पिता की मृत्यु का दृश्य! उस दृश्य को वह परे ढकेलता है तो दूसरा दृश्य आ जाता है. फिर तीसरा, फिर चौथा, फिर पांचवां. . . .दृश्य ही दृश्य तो हैं.

▣

पिता की मृत्यु के बाद घर का स्वामित्व बड़े भाई के हाथ में आ गया था और उनकी भी असमय मृत्यु हो गयी थी. तब उसने शहर जाकर पढ़ने के लिए भाभी को राजी कर लिया था.

शहर में उसने एक कमरा ले लिया था और अब वह केवल शनिवार को घर आता, राशन आदि लेने. सोमवार की सुबह फिर क्वार्टर पर हाजिर हो जाता. कभी-कभी तो महीने पर या किसी मुख्य पर्व पर ही घर जाता. दरअसल क्वार्टर की जिंदगी उसे बेहद अच्छी लगती थी. इसलिए नहीं कि उसका क्वार्टर बहुत अच्छा था, बल्कि इसलिए कि वहां उसके ढेर सारे दोस्त आते, जिनसे उसे बौद्धिक खुराक मिलती थी. वह अपने को उनके सामने अभिव्यक्त करता और उनकी अभिव्यक्तियों को सुनता. इस प्रकार उसे लगता कि निश्चय ही भविष्य में वे किसी नयी दिशा का वातायन खोलने में सफल होंगे. . . . .

उसका क्वार्टर रेलवे स्टेशन के करीब एक अंधेरी गली में था. वह मकान बहुत पुराना था, जिसे एक आदमी ने पचीस रुपये महीने पर ले रखा था. उस आदमी ने उसे नीचे वाला कमरा पंद्रह रुपये में दे दिया था. इस प्रकार वह सबटेनेंट बनकर रह रहा था.

कमरे में एक दरवाजा था और एक खिड़की. वहां पहले से एक बड़ी मेज पड़ी थी, जिसे उसने खिड़की के पास लगा लिया था. यद्यपि वह बहुत पुरानी थी और हिलती-डुलती थी, पर ईंटों के सहारे उसने अपनी बंसखट बिछा ली. बंसखट जरा ऊंची ही खरीदी थी, ताकि उसी से कुर्सी का काम भी लिया जा सके और वह बंसखट पर बैठकर आराम से मेज पर लिख लेता था.

उन दिनों कमरे में बैठे-बैठे उसने एक अव्यक्त रोमांस भी लड़ाया था. खिड़की के सामने वाले घर में एक लड़की रहती थी, सांवली सी. उस घर के आंगन का दरवाजा खिड़की के ठीक सामने खुलता था, जिस पर हरे रंग का एक पर्दा बराबर लटकता रहता था. वह लड़की कभी-कभी पर्दा उठाकर किवाड़ों पर टांग देती और उसकी ओर मुंह करके खड़ी हो जाती. ऐसा वह प्रायः उसी वक्त करती, जब वह मेज पर कुछ लिख रहा होता. एक रोज कलम रोककर वह उधर देखने लगा था और मुस्करा उठा था. लड़की भी मुस्करायी थी. यद्यपि प्रेम करने के लिए वह एक गोल्डन चांस था, पर वह इस चक्कर में नहीं फंसना चाहता था. इसीलिए उसने पत्रव्यवहार का चक्कर भी नहीं चलाया और उनका रोमांस बस इतना ही आगे बढ़ सका कि अब वे एक दूसरे को मुंह चिढ़ा लिया करते थे.

रात को वहां दोस्तों की महफिल जमती थी. यद्यपि कमरे में जगह कम थी, पर वे लोग अपने को उतने में ही एडजस्ट कर लिया करते थे. कुछ लोग बंसखट पर बैठ जाते और कुछ लोग मेज पर. और बहसें शुरू हो जातीं . . .

उनकी ये बहसें सिर्फ बरसात में बंद रहतीं. कारण कि तब उसका कमरा इस लायक नहीं रह जाता था कि उसमें बैठा जा सके. बारिश जब होती, उसकी एक दीवार से इस कदर पानी रिसता कि तमाम फर्श पर पानी ही पानी हो जाता और उसके दोस्त डर जाते कि कहीं यह मकान ढह न पड़े. कुछ लोगों ने उसे कमरा छोड़ देने की सलाह भी दी, पर वह केवल मुस्कराकर रह गया.

"यह कमरा मेरा देश है, अपने देश को छोड़कर कहां जाऊंगा?"

गुलशन ने एक बार यह बात कह दी थी तो कई दिन तक वाहवाहियां लूटता रहा. और अचानक ही उसे मालूम हुआ कि उसका विद्यार्थी जीवन समाप्त हो गया. अब वह छात्र नहीं, राष्ट्रनिर्माता है.

▣

गर्मियों में घर लौटा था तो राष्ट्र-निर्माण की योजनाएं लेकर ही. और दिन भर नीम के नीचे पलंग डालकर गांधी और लोहिया की पुस्तकें पढ़ता रहता, लेकिन एक दिन उसे मालूम हुआ कि उसका गौना हो रहा है. जब वह हाई स्कूल में था, तभी विवाह हो गया था. पीली-सी धोती पहने सिर पर मौर बांधे कैसा तो लगता था वह! और गौने के दिन उसे शहरी लड़की की याद आयी. उसका मुस्कराना, मुंह चिढ़ाना . . . .पर उसकी पत्नी निकली बिल्कुल भोली-भाली, निपट देहातिन, जरा-जरा सी बात पर लजा जाने वाली . . .उसे यह सब अच्छा नहीं लगा.

'लज्जा नारी का आभूषण है', कैसे-कैसे रद्दी कोटेशन मिलते थे हमारे पूर्वजों को; उसने मन ही मन सोचा और पत्नी को अपनी योजनाएं समझाने लगा. वह देर तक राष्ट्र-निर्माण में स्त्रियों का क्या योगदान हो सकता है, इस विषय पर बोलता रहता और पत्नी बेचारी बुत बनी सामने बैठी रहती.

"बहू को अब चूल्हा-बर्तन करने के लिए भी कहो लाला."

एक दिन भाभी ने उसे टोका तो वह धरती पर आ गया. पत्नी उसी दिन से भाभी के कामों में हाथ बंटाने लगी.

और एक दिन पत्नी से ही उसे मालूम हुआ कि कल से उनका खाना अलग पकेगा. धरती से भी अधिक यथार्थ यदि कोई स्थल होता हो तो वह वहीं पहुंच गया था.

बंटवारे के नाम पर भतीजों से झगड़ा हुआ तो उसकी आंखें खुल गयीं. वह किसको क्या कहता? बाबूजी होते, अम्मां होतीं, भैया होते तो कुछ बोलता भी.

"इन दो कोठरियों के अलावा कुछ नहीं लूंगा."

आदर्शवाद के जोश में उसने घोषणा कर दी. अगले दिन से राशन उधार आने लगा.

"मैं शहर जा रहा हूं. जब तक न लौटूं, धैर्यपूर्वक रहना. किसी से कुछ मत कहना. अपना काम खुद कर लेना. लज्जा के चक्कर में मत पड़ना."

उसने दूसरी घोषणा की और शहर आकर कमरे का दरवाजा खोला. फर्श पर जमा ढेर सा पानी बाहर आ गया. उसे लगा कि उसके भीतर का मवाद बह रहा है. रघुवीर शर्मा भर रह गया था वहां. बाकी लोग किसी न किसी काम में फंस गये थे. प्रायः सबके यहां कोई न कोई बिजनेस होता था. रघुवीर के पास कुछ नहीं था. छोटी-मोटी नौकरी से घर चलाने वाले बाप गर्मियों में मर गये थे और अब वह छोटी-मोटी नौकरी कर रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या करते हो तुम?"

"प्रूफ रीडिंग." रघुवीर शर्मा ने 'आजाद भारत' नामक अखबार का हवाला देते हुए बताया.

"यार, मेरे लिए भी कुछ करो." गुलशन की आंखों में ढेर सारी दयनीयता इकट्ठी हो गयी थी.

"करूंगा!" शर्मा ने आंखें झुका ली थीं. वह उस समय घर से लायी रोटियों में से बची एक रोटी को प्याज के साथ खा रहा था, "साथ दो!"

शर्मा ने एक टुकड़ा तोड़ लिया था, कड़क्! लगा, रोटी का टुकड़ा नहीं, उसके शरीर का कोई टुकड़ा कड़क् से बोलकर टूट गया है. और फिर दो महीने का बकाया किराया न दे सकने के कारण अगले दिन उसे कमरा छोड़ देना पड़ा.

अंतिम बार फिर वह मेज पर बैठा, लिखने का अभिनय करता हुआ, शायद लड़की सामने आये तो उसका चिढ़ाया हुआ मुंह भी देख ले, पर वह नहीं आयी.

▣

सामान उसने शर्मा के यहां रख दिया और खुद सड़क पर आ गया, "आजादी के बाद का मैं असली भारतीय युवक हूं." वह बुदबुदा उठा था और उस दिन भी उसके होंठों पर मुस्कान तैर गयी थी.

रघुवीर शर्मा ने उसे अपने साथ कॉपी होल्डर के रूप में रख लिया था, लेकिन अपने घर में उसे रख सकने में वह असमर्थ था. घर ही कितना बड़ा था. क्या वह घर कहने लायक था भी.

"इसकी फिक्र मत करो!" गुलशन के होंठों पर उस दिन भी मुस्कराहट थी.

खाने के लिए एक होटल में उसने तय कर लिया था और सोने के लिए रेलवे स्टेशन के प्रतीक्षालय को उपयुक्त स्थान समझा था. जिस दिन बारिश न हो रही होती और उमस होती, उस दिन वह सामने पार्क में सो रहता. यद्यपि कई बार वह सोचता कि कहीं पुलिस वाले उसे परेशान न करें, पर यह देखकर उसे संतोष हुआ कि साधना के इस मार्ग पर चलने वाला वह अकेला साधक नहीं है. इस देश की पुण्यवती धरती पर ऐसे अनेक साधक हैं.

और एक दिन उसे लगा कि वह बीमार हो गया है.

"ओस में सोने के कारण है, जाओ, एक-दो रोज के लिए घर चले जाओ. आराम कर आओ."

शर्मा ने सलाह दी तो तुरंत ही वह घर के लिए चल दिया. उस समय पत्नी को देखने की भी तीव्र इच्छा उसके मन में उत्पन्न हो गयी थी.

घर आकर देखा तो पत्नी बुखार में तड़प रही थी. वह बड़बड़ा रही थी और उसकी बड़बड़ाहट को सुनने वाला वहां कोई नहीं था.

"कहां गये राष्ट्र निर्माता?" उसे लगा कि उसकी धरती तड़प रही है. पत्नी नहीं, धरती बड़बड़ा रही है.

कई दिनों तक पति-पत्नी दोनों ही बीमार पड़े रहे थे. सोचा था, दोनों साथ ही ठीक होंगे, पर वह पहले ठीक हो गया. नौकरी की याद उसे भूली नहीं थी, लेकिन पत्नी ने अब शर्त लगा दी कि या तो मुझे वहीं ले चलो या तुम यहीं रहो. निश्चय ही वह दो में से एक बात भी नहीं कर सकता था. अतः उसने तीसरा फैसला लिया.

"मैं घर से आया-जाया करूंगा."

पत्नी खुश थी, क्योंकि वह नहीं जानती थी कि शहर यहां से पंद्रह मील दूर है और उसके पति की छुट्टी चार बजे नहीं, पांच बजे होती है. उसकी राष्ट्र निर्माण की योजना समझाने वाला आदमी जहां काम करता है, वहां शानदार दफ्तर नहीं, काली दीवारों से घिरी एक मरियल कोठरी है, जिसमें जीरो पावर का एक बल्ब जलता रहता है और वह बगल की प्रेस-मशीन की राक्षसी चिग्घाड़ों के बीच बैठा कॉपी-होल्डिंग करता है, अर्थात मूल प्रति को ध्यान पूर्वक देखता रहता है और शर्मा प्रूफ पढ़ता है या शर्मा की अनुपस्थिति में वह गैलियों के प्रूफ देखता है.

▣

शहर लौटा तो छुट्टियों के दिनों का पैसा काटकर वेतन के नाम पर उसे जो कुछ मिला, होटल का बिल उससे ज्यादा था.

"यार शर्मा, मुझे गांव के बनिये का बिल भी देना है." उसने करीब-करीब टूटते हुए कहा था.

"तब इससे काम नहीं चलेगा. यहां तो इससे ज्यादा नहीं मिल सकेगा. तुमने प्रूफ देखना सीख लिया है, कहीं दूसरी जगह ट्राइ करो. अगर कहीं प्रूफरीडरी मिल गयी तो कुछ ज्यादा पा जाओगे या फिर कुछ सस्ता लेखन करो. अच्छे पैसे मिलते हैं."

गुलशन चुप रहा. घर आकर उसने वह कहानी निकाली, जो स्टूडेंट लाइफ में लिखी थी. उसमें सस्ते रोमांस का चित्रण था.

"यह कहीं छप जायेगी?" शर्मा से दूसरे दिन उसने पूछा तो वह उसे लेकर 'चित्रा' मासिक के दफ्तर चला गया. संपादक ने कहानी पढ़ी और रख ली.

"छप जायेगी?" उसने बहुत ही उतावले-पन से प्रश्न किया.

"और कुछ लिखते हो, फीचर-वीचर?" संपादक ने घूरकर उसे देखा.

"लिखता तो नहीं, पर लिखना पड़ा तो लिख लूंगा. क्या आपके यहां कोई जगह खाली है. . ." वह हड़बड़ी में बोलता चला जा रहा था.

"सोमवार को आओ."

यह वाक्य संपादक का था, जिसे कई सोमवारों को उसे सुनना पड़ा. तब तक 'आजाद भारत' से भी वह हटा दिया गया. उसके संपादक को 'कॉपी होल्डर' की पोस्ट अनावश्यक प्रतीत हुई.

"जी, मैं आजकल बहुत परेशान हूं. . . कृपया. . .!!"

"चित्रा' के संपादक से उसने याचना करने की चेष्टा की.

"प्रूफ पढ़ना जानते हो?"

"जी. . .!"

और उसके सामने 'चित्रा' का एक फर्मा रख दिया गया. वह प्रूफ पढ़ने लगा. कहानी बहुत गंदी थी, पर उसे सिर्फ प्रूफ देखना था. उसकी भाषा भी ठीक नहीं थी, पर रघुवीर ने बताया था कि प्रूफ पढ़ने का मतलब है मूल कॉपी में जो है, वह छपा है या नहीं, दूसरे किसी प्रकार के संशोधनों का अधिकार सिर्फ संपादक को होता है.

"ठीक है, तुम कल से आओ."

अब उसे विश्वास हो गया कि उसकी नौकरी पक्की हो गयी.

"तनख्वाह कितनी लोगे?"

"जो आप उचित समझें."

वह जानता था कि वह अभी इतना काबिल नहीं हो गया है कि मुंहमांगा धन मिलेगा, यह तो मात्र बिजनेस मेथड है और संपादक ने उसे डेढ़ सौ देना उचित समझा.

पहले महीने उसे एक सौ सत्तर मिले थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उसे लगा कि कच्ची सड़क पर चलने वाला वह 'चित्रा' का भूतपूर्व उप-संपादक नहीं है, सच तो यह है कि वह स्वयं एक कच्ची सड़क है, जिस पर ऐसे अनेक संपादक-उपसंपादक चला करते हैं, चलते रहेंगे . . .'

उसकी कहानी 'चित्रा' में छप गयी थी, जिसके पारिश्रमिक के रूप में पच्चीस रुपये उसे अतिरिक्त दिये गये थे और एक रोज की छुट्टी के लिए पांच रुपये काट लिये गये थे. "क्या यहां छुट्टी का प्रावधान नहीं है?" उसने संपादक से जानना चाहा था.

"है, पर अभी तुम ट्रेनिंग पीरियड में हो. छह महीने बाद तुम छुट्टी ले सकोगे. जाओ, इन दो फर्मों के प्रूफ जल्दी से देखकर जाओ, और देखो, आज पांच बजे के बाद भी रुकना होगा, कुछ और प्रूफ देखने हैं."

संपादक ने फर्मे उसकी ओर लगभग फेंक दिये थे और किसी कहानी को पढ़ने में लीन हो गया था. वह चुपचाप वहां से उठ गया था, पूरी तरह एक ट्रेनी की मानसिकता से ग्रस्त होकर.

मैं कैसा उप-संपादक हूं, जो केवल प्रूफ पढ़ता हूं और एक दिन की छुट्टी भी नहीं ले सकता? इस प्रश्न ने उसके शरीर को झनझना दिया था.

□

उस दिन सायकिल चलाता हुआ वह बहुत कुछ सोचता रहा. अच्छी जिंदगी किसे कहते हैं? सबसे पहले इसी प्रश्न पर उसने सोचना शुरू किया, पर दिमाग में पत्नी आ गयी और पता नहीं क्यों, पत्नी के पीछे-पीछे उसके ससुर भी चले आये, जो सब कुछ सुनकर केवल लड़की बुलाने आ गये थे. यह तो अच्छा रहा कि पत्नी ने जाने से इनकार कर दिया और अचानक ही उसका मन खिल उठा. पत्नी के प्रति गर्व हुआ, लेकिन साथ ही ससुर नामक जीव के प्रति घृणा भी उसके मन में भर गयी. उसने इस जीव की तुलना उस शेर से की, जो तालाब में खड़ा स्वर्ण-कंकड़ दान कर रहा था और जैसे ही एक पथिक तालाब में घुसा, कीचड़ में फंस गया और शेर ने उसे उदरस्थ कर लिया.

सोचता-सोचता वह कच्ची सड़क पर आ गया. अंधेरा हो चला था और नवंबर की ठंडी हवा बहने लगी थी. वह यद्यपि महीने में मिले टेरीकॉट का सूट पहने हुए था, पर सर्दी में उसकी उंगलियां ऐंठने लगी थीं. सायकिल का हैंडिल इधर-उधर हो जाता था और कई बार उसे लगता कि अब वह गिर पड़ेगा.

इस कच्ची सड़क को वह बचपन से देखता आ रहा है. इसी तरह उखड़ी-पुखड़ी, धूल की दलदल बनी, कटी-फटी. बारिश में इस पर कीचड़ हो जाता है और गर्मियों में बैलगाड़ियों के चलने से धूल की दलदल बन जाती है. दोनों स्थितियों में सायकिल चलाना कठिन हो जाता है. सर्दियों में इतनी कठिनाई नहीं होती, तो भी जगह-जगह उखड़ी गिट्टियों पर पहिया पड़ जाने के कारण आये दिन कचक पड़ जाती है.

उस दिन भी कचक पड़ गयी थी. सायकिल पंक्चर हो गयी थी और घर तक पैदल ही उसे आना पड़ा था. सड़क के किनारे पंक्चर बनाने वाला एक बूढ़ा बैठता था, पर शाम होने से पहले ही वह दूकान बंद कर देता था. फिर सायकिल भी तो उसकी पुरातात्विक ही है. कितने दिन हो गये, जब गांव के ही मिस्त्री से उसने इसे इधर-उधर के पुराने पुर्जों को जोड़-जाड़कर बनवाया था. ससुराल की सायकिल तो अभी वादे पर थी और यह सायकिल क्या इस सड़क के योग्य है?

इस कच्ची सड़क से उसे कब छुटकारा मिलेगा? वह अक्सर सोचा करता और शहर में पत्नी को रखने लायक मकान की तलाश में रहता, पर मकान या तो मिलते ही नहीं या मिलते तो सत्तर-अस्सी से कम उनका किराया न होता. वह पराजय स्वीकार लेता और सायकिल लेकर चल पड़ता, भविष्य की योजनाएं बनाता हुआ.

उसके दिल में यह संतोष जरूर था कि वह एक प्रसिद्ध पत्रिका का उप-संपादक है और आज नहीं तो कल उसका नाम भी प्रसिद्ध हो जायेगा. तब उसकी तनख्वाह भी बढ़ जायेगी और इज्जत भी.

"गुलशन बाबू, संपादकजी ने आपका हिसाब कर दिया है. छः महीने हो गये न! सोमवार को आकर तनख्वाह ले जाइएगा."

लेकिन आज चलते समय जब चपरासी ने उससे यह बात कही तो एक बार फिर उसे धरती पर आना पड़ा.

"मतलब?" वह चौंक गया था.

"यहां यही होता है बाबूजी, छः महीने से ज्यादा के लिए कोई नहीं रखा जाता, लोगों की कमी कहां है? तब आपको ज्यादा दिन रखकर वे परमानेंट क्यों करेंगे, आप की तनख्वाह क्यों बढ़ायेंगे?"

ओह! शायद इसीलिए हमारी कच्ची सड़क पक्की नहीं की जा रही है. वैसे तो हर साल उसमें काम लगता है, पर वह रहती है कच्ची की कच्ची. पक्की हो जायेगी तो पक्की करने के लिए फिर रुपया कैसे मंजूर होगा.

"बन गयी आपकी सायकिल बाबूजी!"

"आंय!" वह हड़बड़ाकर उठ बैठा. क्या क्या सोचने लगा था वह? अब तो रात हो गयी. इस बीच उसे चाहिए था कि जरा जल्दी बनाने को कहता इससे. अंधेरी रात है, कहीं किसी मिट्टी से टकराकर पहिया फिर न पंक्चर हो जाये.

"तीन रुपया हुआ बाबूजी!"

"तीन रुपया?" उसने जेब टटोली. मुश्किल से सत्तर-पचहत्तर पैसे रहे होंगे.

"अच्छा, सायकिल रखे रहो, सवेरे आकर ले जाऊंगा, पैसे पूरे नहीं हैं."

यह बात उसने जल्दी-जल्दी कही और पक्की सड़क को पार करके कच्ची सड़क पर पहुंच गया.

फिर उसने सोचा, जल्दी क्या है, पैदल ही तो चलना है, धीरे-धीरे चला जाये. और तब वह संभल-संभलकर चलने लगा. रात धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी. मौसम गर्म था, पर उसे न गर्मी का एहसास हो रहा था, न सर्दी का. तो क्या वह जड़ है? इस प्रश्न ने किसी कोने में सिर उठाया तो उसके होंठों पर फिर एक विचित्र मुस्कान तैर गयी और उसे लगा कि इस कच्ची सड़क पर चलने वाला वह 'चित्रा' का भूतपूर्व उपसंपादक नहीं है, सच तो यह है कि वह स्वयं एक कच्ची सड़क है, जिस पर ऐसे अनेक संपादक-उपसंपादक चला करते हैं, चलते रहेंगे. . . . □

● ए-24/15 कोयला बाजार, वाराणसी-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ते की मौत

मृणाल पांडे

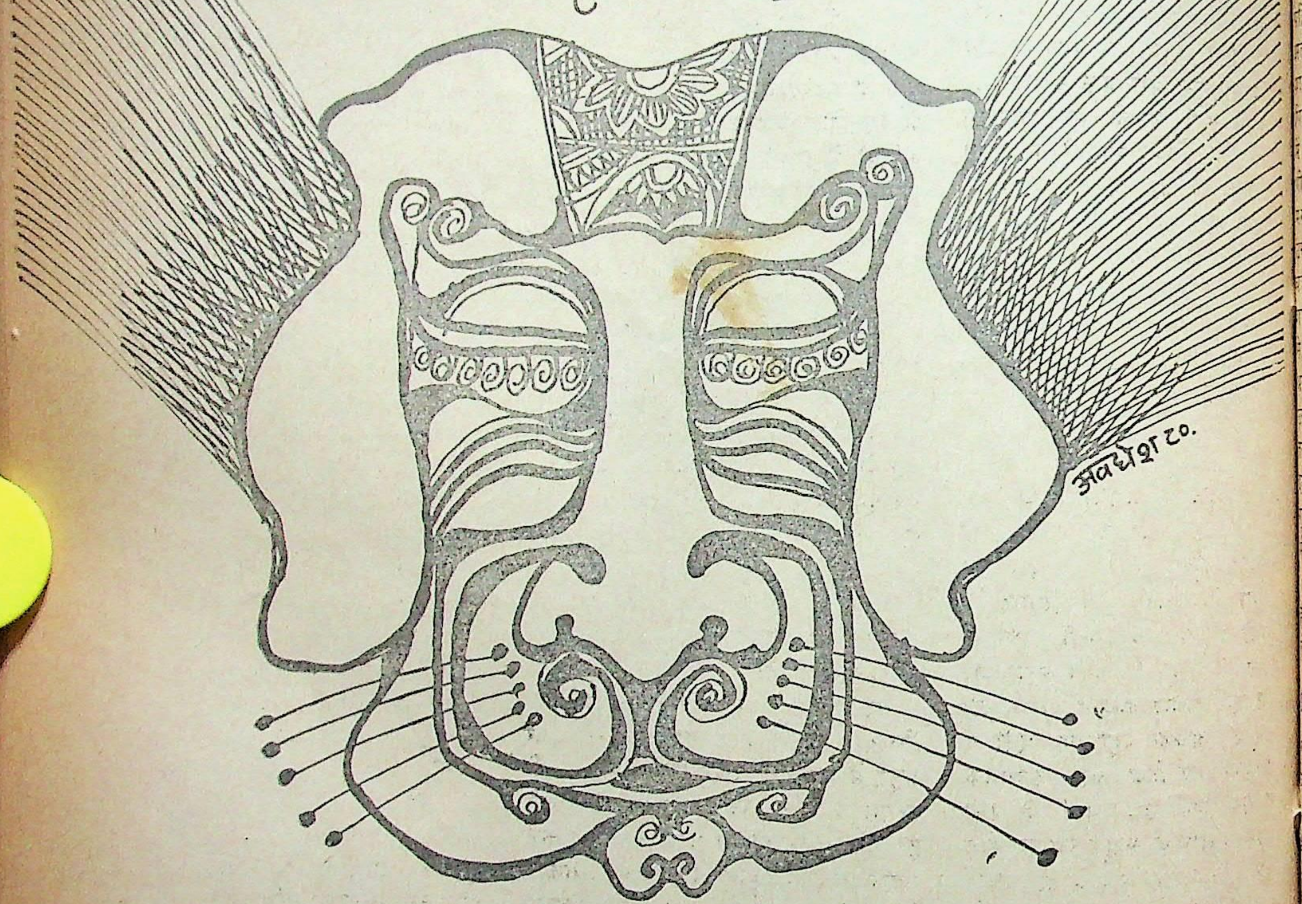

जब वे उसे लाये थे तो उसकी आंखें बस खुली ही थीं. धुनकी रुई के फाहे-सा गदबदा ललछौंहा पिल्ला जिसका अपना बदन खुद उसके लिए भी एक अजूबा था. हर एक-एक कदम वह लड़खड़ा-लड़खड़ा कर बढ़ाता था, अपने पंजों की लचक से अपनी देह का भार टोहते हुए. फिर जब कुछ-कुछ झूलते हुए रेंगते हुए वह हर हथेली में थूथन घुसाकर मां का स्तन ढूंढ़ने लगा तो अचानक मां को लगा कि वे लोग उसे जल्दबाजी में ही उठा लाये थे. यह बड़ी खराब आदत थी उन लोगों की. मौके की मुलायमियत से अभिभूत होकर बात की औकात और अपनी जिम्मेदारी की गंभीरता भुला बैठना. आखिर पिल्ले को वे देखने भर ही तो गये थे. कोई स्टांप लगा के दरख्वास्त तो नहीं दी थी कि ले ही लेंगे, पर जब देख लिया तो कहने में अजीब झेंप-सी लगने लगी कि नहीं लेंगे. हालांकि वे पिल्ले काफी भद्दे थे. सभी देसी कुतिया के भोंडे पिल्लों को घर ले जाने को जान-बूझकर लोग उन्हीं सरीखे मूर्खों को बुलाते होंगे. मां मन ही मन अपने को कोसने लगी, पिता भी. उन्हीं के से लोगों के सहारे तो माया संसार को बस में किये रहती है, है कि नहीं? जो हर बार जिंदगी के सुथरेपने में अपने आप बेवजह एक बेहूदी खलबली मचाकर निरीहता से वह बस एक मुहलत और मांगने लगते हैं, प्यार करने की, तरने की.

"अब क्या खिलाना है इसे?" गाल पर हाथ रखकर वह बोली. पिता बच्चों के साथ घुटनों के बल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...निहाल हो रहा था. अपनी सारी झुंझलाहट के बावजूद उसने ...अपने आप को धीमे-धीमे निहाल होता पाया. यहां तक कि ...में वह भी फर्श पर उकडूं बैठकर उसे आ-आ करने लगी.

उस सारी रात पिल्ला न खुद सोया, न ही उसने किसी को सोने दिया. जाड़े के दिन थे. टोकरी में बिछे शाल के बावजूद उसे ...अपनी मां की बदन की गर्माई नहीं मिल पा रही थी. एक पतली आवाज में देर तक कर्णकटु कूं-कूं करता रहा, जैसे खूब जंग खाये पहियों वाली गाड़ी खेंची जा रही हो और वे सब बारी-बारी से ...हलाते और उसे चुपाने के उपाय सोचते रहे. तभी किसी को याद आया कि उसने पढ़ा था कि अलार्म घड़ी के टिक-टिक से पिल्ले चुप हो सकते हैं. अलार्म घड़ी लायी गयी. ले देकर पूरे घर में वही तो एक अलार्म घड़ी थी. मां हर बार यह बात दुहराती थी, जब भी बच्चे उसके करीब से दहलाने वाली तेजी से खेल में ...गुजरते या पिता उसे चाबी देना भूल जाता. इस बार भी उन्होंने वही बात दुहरायी. तब एक छोटे अंगोछे में लपेटकर ...पिल्ले की बगल में रख दी गयी. कुछ पल वह चुप रहा. शायद घड़ी की टिक-टिक से नहीं, बल्कि उनके सजग सान्निध्य ...पर फिर यकायक रो पड़ा—कींऽऽऽ? उसके हिलने से अलार्म की कोई कल भी हिल पड़ी शायद और क्षण भर को उसकी 'कीं कीं' के ऊपर घनघनाता कर्कश अलार्म भी बज उठा. ...कुछ हंसते, कुछ खीझते, कुछ झेंपते पिता ने घड़ी हटा ली. ...सारी नेकनीयत पर बेहूदा और नाकामयाब प्रक्रियाओं से ...गुजरते-गुजरते सड़क पर दूध वालों की सायकिलों की खटर-पटर ...चालू हो गयी थी.

उफ देखो तो सवेरा हो गया है, अब इसबेहूदा बला को ...ही देना है, माता-पिता ने ऐलान किया. बच्चे चुप रहे. फिर ...चल दिये, समझदारी से.

...से घर आते ही बच्चों ने गोली-सा प्रश्न दागा, "इसकी जात क्या होगी मां?"

"किसने पूछा?" पता चला कि इत्ती की मौसी ने. इत्ती का घर उनके घर से सटा हुआ था. भरी-भरी छातियों वाली औरतों का एक झुंड सदा उसकी बाल्कनी पर मुझे सलवार-कुर्ता बगैर दुपट्टे के खड़ा-खड़ा पड़ोस पर गीध-सी खुर्दबीनी नजर ...रखता था. वे इत्ती मौसियां थीं या बुआएं भी हो सकती थीं, ...कि इन सब को वह आंटी बुलाती थी. एक अदद मां भी थी ...यद, क्योंकि कभी मम्मी की गुहार भी लगती थी. इत्ती के पिता ...सी पतली मूंछों वाले एक अधगंजे और बेवजह ...चिंतित रहने वाले इंसान थे, जो खिजाब के बल से जाती जवानी ...दुम पकड़े अभी तक लटके हुए थे. हमेशा स्कूटर से उतरकर अंग्रेजी धुन गाते हुए सीढ़ी चढ़ते थे. उनसे नमस्ते कहो तो ...कहते थे और मां को देखकर बड़े अदब से गुडमॉर्निंग ...हते भी.

माता-पिता को वे फूटी आंखों नहीं सुहाते थे, वे भी और ...-सी छातियों वाली उनके घर की वे औरतें भी, जो ...बुनाई के चीर लहराती हर फेरीवाले के कर्कश स्वर में ...और तकरार करती थीं, पर इसके बावजूद दोनों परिवारों में एक सभ्य दुआ-सलाम का नाता बरकरार था. "जात? अरे कुछ भी होगी," मां ने किंचित तल्खी से कहा, "कह दो कि देसी है. इसकी मां माथुर साहब के घर में परच गयी थी, सो उठा लाये." और फिर उसने यह भी कुछ रुककर कहा, "दुनिया भर को पिल्ले की जात-पांत की खबर करना भी ऐसा क्या जरूरी है? जिन्हें जरूरत हो सो बढ़िया नस्ल वाले छांट के ले आयें, हां? नहीं तो. अरे, जब लाये हैं तो पालेंगे ही. गृहस्थ के घर में हर किसिम के जीव पलते हैं कि नहीं?"

सो देखते-देखते पिल्ला पल भी गया, नामकरण भी हो गया, लालू. लालू उस्ताद. अपनी छोटी-छोटी भूरी आंख सिकोड़कर वह जब देखता तो सच में गुंडा लगता था.

"क्यों बे जेल जायेगा?" बच्चे एक लंबी सुतली फहरा रहे थे. वह भी उसे नोंच-नोंचकर खेलने लगा, जैसे हथकड़ी छुड़ा रहा हो. मां ने कहा कि पता नहीं ऐसी भाषा वे कहां से सीख आते हैं. खबरदार, पर लालू उस्ताद चोर-चोर खेलते रहे. पिल्ला हिल गया था. और फिर से एक बार उनका निर्णय भी.

ज्यों-ज्यों लालू बढ़ रहा था, उसकी देसी नस्ल भी स्पष्ट होती जा रही थी. गुलाबी और लंबा थूथन, कुछ-कुछ लोमड़ी का सा चेहरा, झब्बेदार पूंछ, और नीचे को दबे कान. पहले बच्चों ने कहा कि उसके कान खड़े होने लगे हैं, अल्सेशियन की तरह, पर कुछ शोध के बाद पता चला कि वह चौकन्ना होने पर कानों को खड़े करने का आभास भर देता था. दुम तो टेढ़ी रहनी ही थी, रही. एक बात थी, जो कतई छुप नहीं सकती थी, और वह था उसका खोरहापन. या तो कभी उसे किसी सायकिल सवार ने टक्कर मारी थी या फिर किसी ने डंडे से मारा था, क्योंकि एक बार वह लंगड़ाता सा घर में आया और कई दिनों की दवाई-सिकाई के बाद ठीक हो पाया.

और इसके बाद वह हर सायकिल सवार या डंडा पकड़े आदमी का पक्का दुश्मन हो गया था. एक बार मां घर में नहीं थी तो एक आदमी देरी तक सड़क से उनकी खिड़की को ताक-ताक कर चिल्लाता रहा कि इस कुत्ते की खातिर उन्हें कभी जुरमाना देना होगा, वे समझ लें, राह चलना साले ने मुहाल कर रखा है वगैरह. अब घर के अंदर लालू सिर्फ रात गये आता था और अपना खाना खाकर अपनी एक निश्चित जगह पर बैठकर गंभीरता से सो जाता था. और कुत्तों की तरह उससे तुतलाकर बचकाने खेल करो तो वह अपनी पीली आंखें सिकोड़कर हिकारत से हट जाता. खुश होने पर वह खड़ा होकर दुम हिलाता था और कभी-कभार मां का हाथ चाट भी लेता था, पर उसके सिर के पास लाल-सुनहरे बालों का जो भंवर था, वहां वह किसी को हाथ न रखने देता था.

बैठकखाने में भी खास दाहिने कोने में एक जगह उसने अपने खास अड़ियल ढंग से हथिया ली थी, मां के प्रतिवादों की ऐसी की तैसी करते हुए. एक-दो बार उन लोगों ने उसे वहां से हटाना चाहा, पर गुर्राहट से डरकर हिम्मत नहीं हुई. छोड़ो भी, उन लोगों ने आजिजी से कहा, जो भय से उपजती है. मां और बच्चे धीमे-धीमे उससे काफी डरने लगे थे, पर जब हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह वह कुछ देर बारी-बारी से सब के कमरों में जा जाकर और दुम हिलाकर अपनी पारिवारिक सदस्यता का भावभीना सबूत दे जाता था तो उनकी कमजोरी को यही बहुत होता. "है तो वफादार," हर सुबह, उसे देखकर वे कहते और हर सुबह पिछले दिन का पूरा मनोमालिन्य न जाने कहां गायब हो जाता. प्यार में हार मानने में आदमी से बढ़कर नाकामयाब कोई प्राणी नहीं. होते-होते घर का कोई सदस्य ऐसा न बचा, जिस पर वह खौंखियाया न हो. इसके सदा तीन-चार बंधे-बंधाये कारण होते थे—एक तो उसकी नींद में खलल पड़ना, दूसरा, उसके हड्डी चबाते वक्त किसी का पास खड़े रहना और तीसरा, अगर वह सोफे या तखत पर अपना कोना छांटकर बैठा हो तो उसे वहां से उठाने की किसी तरह की अधिकृत-अनधिकृत चेष्टा. तब एक छन में उसका रुख बदल जाता था—रूप भी. और वह अपने पूर्वज भेड़ियों से हूबहू मिलने लगता था. उसके जबड़े ऊपर सिमटकर तीखे मांसखोरे दांत बाहर आ जाते, आंखों के पपोटे चढ़ने से आंखें सफेद और पुतलियां स्याह हो जातीं और गले से एक भीषण घुरघुराहट निकलती, बच्चे तो उसके क्रोध के लक्षणों से इतने वाकिफ हो चले थे कि उसका ऊपरी होंठ सिमटते ही तितर-बितर हो जाते, पर अगर कोई नया बाहरी व्यक्ति घर में आया हो तो जोखिम खड़ा हो जाता था. शर्म आती थी, सो अलग. कई लोग जो साफ-सीधी बात कह डालने के अपने ठेठ हिंदोस्तानी गुण से अभिभूत थे, साफ सीधे ढंग से कह जाते कि ऐसे कुत्ते का बच्चों के घर में पलना ठीक नहीं. कमाल है, पढ़े-लिखे होकर भी—पर इसी 'भी' पर दो साल गाड़ी अटकी रही. मां उसकी गुर्राहट सुनकर भी हर रोज नियमित समय पर रातब देती रही, पिता अखबार पढ़ने वाली अपनी नर्म धूपभरी कुर्सी का मोह त्यागकर बगल की चौकी पर बैठ तकलीफदेह कोणों में अखबार और चाय की प्याली हां हां करता संभालता रहा, और बच्चे हर मित्र को लालू के खौंरहेपन से आगाह कर, चोरी-छिपे अपने हिस्से के बिस्कुट और मक्खन लगी डबलरोटी उसे खिलाते रहे. लालू अब एक भरपूर कद्दावर कुत्ता था. स्पष्ट और निखालिस रूप से देसी और एक मंझोले ढंग से गठे कड़ियल बदन का ऐंठभरा मालिक. प्रायः गलियों में वह देसी कुतियों के साथ घूमता दीखता था और कभी दो-दो तीन-तीन रात तक गायब भी रहता, पर घर के बिगड़ैल नशाखोर निखट्टू सदस्य की तरह तब भी उसका आबोदाना घर के कोने में पड़ा ही रहता. नाराजगी, डर और प्यार के गड्डमगड्डपने में.

▣

तभी एक दिन लालू ने मां को काट खाया और सब कुछ जन्नाटे से हिल गया. समय आ गया था कि चीजों के गड्डमड्डपने को दुनियादारी से साफ कर निश्चित किया जाता कि घर में लालू का करना क्या है? हुआ यह कि बरसात के दिन थे और मां अक्सर लालू के कान और गर्दन के पास 'टिक' चिपके देखती थी. छोटे-छोटे खटमल से कीड़े जो कि खून पीकर अंगूर से गोल और नरम होकर झड़ जाते और एक फुड़िया पीछे छोड़ जाते. हिम्मत कर उस दिन मां एक टूटी प्याली में मिट्टी का तेल लेकर बैठी और हाथ से चुन-चुनकर उन्हें निकालती प्याले में डालने लगी. छह-सात तक तो मामला ठीक रहा और मां जानवरों की देखभाल और घर की सफाई से अपने को जोड़कर कोई गर्वभरी बात कहने ही जा रही थी कि तभी लालू खौंखियाकर उठ खड़ा हुआ और मां के हाथ में काटकर चारपाई के नीचे घुस गया. घाव इतना गहरा नहीं था, जितना कि घटना की आकस्मिक क्रूरता का धक्का. थोड़ी देर मां बैठी रह गयी, फिर दवा की तलाश होने लगी और हाथ धोया जाने लगा. इस सारी हड़बड़ी के बीच पूरे दिनभर लालू उस्ताद गायब रहे और दूसरे दिन सुबह सिर झुकाये घर के भीतर आये और चुपचाप जाकर कोने में पहुंड़ रहे. मां उसके पास से गुजरी तो पूंछ आदतन दो-तीन बार सलूट में हिली और भूरी पुतलियों में मैत्रीभाव सा कुछ कांपा, पर दिलों में हौल बैठ गया था. कल किसी बच्चे को या पड़ोसी को किया तो!

उस शानदार पशुचिकित्सालय का डाक्टर झुंझलायी भवोंवाला एक मोटा-सा शख्स था. उसने पूरा ब्यौरा सुनकर उंगलियों से भीतर को इशारा किया, "मेरी राय में आप इसे खतम करवा दें तो ठीक रहेगा. स्वभाव तो अब इसका दवा-दारू, विटामिन किसी से बदलेगा नहीं. बच्चों का क्या है. बढ़िया नस्ल का दूसरा ला दीजिए, दो दिन में पूछेंगे भी नहीं कि कहां गया. देशी कुत्ता ही तो है. किसी को काटा तो नहीं इधर इसने?" मां को स्वीकार करना पड़ा. हाथ में अभी भी पट्टी बंधी थी. छुपाती तो कैसे? डाक्टर का चेहरा और भी गंभीर हुआ, "तब तो हफ्ताभर इसे देखना पड़ेगा. कहीं 'रेबीज' न हो, वर्ना आपको चौदह सुइयां लेनी होंगी. हफ्ते भर बाद आप फोन करके पूछ लें, अगर 'रेबीज' हुआ तो शर्तिया खुद ब खुद मर चुका होगा, अगर नहीं हुआ तो फिर आपकी मर्जी, वैसे पंद्रह रुपये में इंजेक्शन आता है—एकदम बिना तकलीफ के जानवर को मारता है—आप फोन पर बता दें तो बस." उन्होंने हाथ से खलास का इशारा किया. बीस रुपये इन आठ दिनों उसके अस्पताल में रहने-खाने के होंगे. आपका फोन नहीं आया तो हफ्ते भर बाद हम खुद इसे खत्म करा देंगे. ठीक?

▣

पैंतीस रुपये भरकर वे जब घर लौटे तो एक दूसरे से आंखें चुरा रहे थे. हफ्ते भर के बाद मां ने पिता से पूछा, "क्या फोन किया था उन्हें?" "हां किया था", पिता ने कहा, "वह जिंदा है. जाहिर है कि उसे 'रेबीज' नहीं है."

"तब?"

"तब? तब? तब क्या," पिता ने झल्लाकर कहा. मां ने सोलह साल की ग्राहस्थिक समझदारी से मुंह सी लिया और नल के नीचे साग धोने लगी, चुपचाप. उसने अपनी पराजय स्वीकार कर यूं मूक सहमति दे दी तो पिता अपनी इच्छा से मां की सहमति आ जुड़ने की शर्म से बौखला गया था. अब वे मुहलत भी नहीं मांग सकते थे.

मरना तो उसे था ही, मरवा दिया, सो ठीक किया. बालकनी की औरतों में से किसी एक ने कहा, "अरे कुत्ता हो तो कुत्ते की औकात में रहे. कुत्ता भी आदमी जैसा तुनकमिजाज हो जाये तो हम लोग पालतू बनाकर किसे रखेंगे, है कि नहीं?"

● सी-24, शिवाजी नगर, भोपाल.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ी कोई सभावना तब तुम्हारे जहन में क्यों नहीं उभरी? क्यों अपनी नाक ऊंची रखने के चक्कर में तुमने किसी दुष्परिणाम कल्पना तक नहीं की? बड़ा समझदार और होशियार मानते हो अपने आप को? हेम की जान लेकर साबित की है तुमने अपनी समझदारी. वाह रे दंभी आदमी! क्या कहने हैं तुम्हारी समझ- ारी के. तुम नाटक बड़ा अच्छा कर लेते हो. मान गये. तुम्हारे मां- आये. ससुराल वाले आये. हमउम्र साला आया. लंगोटिया आये. सबको धत्ता बता गये तुम. किसी को हवा भी नहीं ने दी तुमने कि कारण तलाश करने की कोई जरूरत है, क्योंकि रण का ताना-बाना बुनने वाला आदमी खुद इसका कारण है. तुम सोचते हो, आदमी इज्जत बनाने या बिगाड़ने की शुरुआत ने आप से करता है. तुम समझते हो, इस बात को भूल जाओगे. . घर ताउम्र तुम्हें काटने को दौड़ेगा. बिस्तर तुम्हें लीलने की िश करेगा. हर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तुम्हारे गले में अटकने ा. कपड़े तुम्हें निगलेंगे. दिन आग बनकर उगेगा. दुनिया धोखा दे सकते हो तुम, अपने आपको धोखा नहीं दे सकते. हेम तो तुम्हें पल-पल, कदम-कदम पर याद आयेगी. कितनी लड़की थी वह. दूसरी शादी की अगर तुमने, तो पता लग ेगा कि 'सीक्वेंस' और 'ट्रेल' में क्या फर्क होता है. तुम्हारी हर जा-नाजायज, अच्छी-बुरी जिद को मानने वाली हेम जैसी की तुम्हें पत्नी के रूप में मिली, तुम्हारा सौभाग्य था. अब ख्वाब ी मत सोचना ऐसी पत्नी के लिए. दफ्तर की जगह पिकनिक चले गये तो कोई चिंता नहीं. होटलबाजी करते रहे तो फिक्र . गप्पें मारते रहे तो गम नहीं. घर आठ बजे पहुंचो या बारह , मुस्कराकर प्रतीक्षा करती मिलती थी तुम्हें हेम. कभी उसने बोलकर कहा भी नहीं तुमसे कि तुम्हारे इंतजार में बैठे-बैठे की आंखें पथरा जाती हैं, दिल घबड़ाने लगता है, दिमाग बुरी ह परेशान होकर थक जाता है.

कई बार तुम देर से लौटे हो. खाना खाकर अखबार देखते हो. बिस्तर पर जाने के बाद तुम्हें पता लगा है कि हेम बुखार से रही है. हंसते, मुस्कराते तुम्हारी सेवा करने वाली वह सहन- लड़की अंदर ही अंदर घुलती रही. खोखली होती रही. ्हारी लापरवाही, तुम्हारा मनमानापन, तुम्हारी स्वेच्छाचारिता से जर्जर बना दिया.

ज्यादती करने में कोई कसर छोड़ी तुमने? पांच साल के विवाहित न में एक तरफ तुमने उसकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया, ी ओर उसकी गोद सप्रयास खाली रखी. कभी सोचा तुमने कि

ी को बर्दाश्त करने, करते चले जाने की सीमा होती है, भले ही वह अपना पति ों न हो. और बर्दाश्त करना भी कैसा, किसी ातंक में अपने को घुटाकर मारना, मारते चले ना और जब सीमा खत्म हो जाय तो ने आप को होम कर देना. एक सहज ्णाशील नारी के अतिरेकजनित आतंक में ास हो जाने की मार्मिक कथा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना सारा दिन वह कैसे गुजारती होगी? किलकारियों के सहारे तो विधवाएं पहाड़ों का सामना करने का बल पाती देखी गयी हैं. तुमने हेम को एकांतवासिनी, निर्वासिनी बनाकर एक खुली जेल में कैद कर दिया. सिर्फ एक साल पुरानी बात है, ज्यादा समय नहीं हुआ. तुम्हें अच्छी तरह याद होगा. तुम हेम को जबरदस्ती 'अबार्शन' के लिए ले गये थे. गर्भवती नहीं हुई थी तब तक, फिर भी ठीक था. पहली संतान का मानसिक सुख दारुण पीड़ा में बदल दिया तुमने हेम के लिए, "मेरे पास जीवन की निश्चित योजनाएं हैं. मैं एक सेंटीमीटर भी इधर-उधर नहीं हो सकता उससे. अभी बच्चा नहीं चाहिए." लो, चलो अपनी गाड़ी हुई पटरी पर. करो कार्यान्वित अपनी योजनाएं. क्या गलत कहा था हेम ने कि तुम तुनक गये? तुम खुली छत पर सरेआम उसे अपने साथ संभोग के लिए विवश कर रहे थे. झूठी तसल्ली के लिए ही सही, मगर वेश्याओं के अड्डों पर भी चारपाइयों के बीच फटे-पुराने परदों की आड़ होती है. तुम एक विवाहित औरत को, जो अभी मां भी नहीं बनी, छत पर बिछे कम से कम दस बिस्तरों की खुली या बंद आंखों में बेपर्दा करने पर तुले थे. एक तो तुम्हें ऐसा बेहूदा प्रस्ताव रखना ही नहीं चाहिए था. फिर चलो, तुमने ऐसा कुछ चाहा भी तो हेम की शर्मसारी को चुनौती नहीं मानना चाहिए था. वह गरीब क्या चुनौती देती तुम्हें? ऐसा कोई अधिकार कभी दिया था क्या तुमने उसे?

जिस रात पत्ते खेलकर लौटते हो, तुम अलग ही रंग में होते हो. एक विचित्र कामना, उद्दाम हवस तुममें कलाबाजियां मार रही होती है. दो-चार पैग भी तुम्हारे अंदर होती ही हैं ऐसे अवसरों पर.हारकर आओ या जीतकर, तुम तोड़ने-मरोड़ने की धुन में रहते हो. ठीक है, तुम्हारा मूड है. तुम किसी गैरऔरत के पास नहीं जा रहे, अपनी पत्नी के पास जा रहे हो. मगर तुम यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हारी पत्नी के भी कुछ मूड हो सकते हैं. उसकी भी कोई पसंद-नापसंद हो सकती है. तुम्हें अगर दीन-दुनिया का होश नहीं होता, अपनी पर उतारू होते हो, इसका मतलब वह भी बेशर्म होकर तुम्हारे साथ नंगी नाचे? उसकी इज्जत नहीं है? मगर तुम ये बातें सोचो तब न? तुम तो सिर्फ अपने बारे में सोचते हो. तुम्हारी इच्छा पूरी होनी चाहिए. तुम्हारे मूड के अनुसार काम होना चाहिए. तुम पति हो. पत्नी के सामने हर मामले में तुम्हारा वर्चस्व स्थापित होना चाहिए. दरअसल तुम ऐसी पत्नी के योग्य नहीं थे. तुम्हें लड़ने-भिड़ने, अपनी चलाने वाली पत्नी मिलनी चाहिए थी. कोई और आदमी अगर तुम्हारी जगह होता तो हेम की पूजा करता. तुमने उसकी सादगी और सेवापरायणता का दुरुपयोग किया. ज्यादा जिद्दी बन गये. ज्यादा नखरेबाज हो गये. ज्यादा समझदार और ऊंचा मानने लगे खुद को.

अब मान लो, कोई देख ही लेता. मोहल्ले भर में बातें बनतीं. पास-पड़ोस की औरतें हेम को टोकतीं, ताने मारतीं, मजाक उड़ातीं. तुम्हारा क्या था? तुम्हें तो सामने आकर कोई कहता नहीं. तुम्हें पता है, जिस मकान में तुम रहते हो, उसमें तुम्हारे अलावा सात किरायेदार और रहते हैं. यही चोंचले पूरे करने थे तो कोई अलहदा फ्लैट ले लिया होता. अलग फ्लैट ले सको, इतना पैसा जेब में नहीं है. पत्नी की परेशानियां महसूस कर सको, इतनी समझ दिमाग में नहीं है. अब कोई क्या करे तुम्हारा? तुम्हें हेम की बात अच्छी नहीं लगी तो क्यों नहीं लगी? उसने इन्कार तो किया नहीं था. इतना ही तो कह रही थी कि कमरे में चलो. यह बात मानने में तुम्हारा क्या जाता था भला? मगर कैसे मानते? वेद वा… गलत न हो जाता? तुम्हारी नाक न कट जाती पत्नी के सामने? उसकी नाक कट जाये, चिंता की कोई बात नहीं. तुम्हारी नाक पर खरोंच नहीं आनी चाहिए. अब तो खुश हो न?

▣

एक आदमी जिद्दी होता है. एक महाजिद्दी होता है. एक महा… जिद्दी था चाणक्य. शिखा न रहते हुए भी जिसकी शिखा का जिक्र तु… अक्सर करते रहते हो. चाणक्य महाजिद्दी जरूर था, मगर तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं था. खरे-खोटे, भले-बुरे की समझ उसमें थी. इसी… लिए जहां वह नंदवंश का समूल नाश कर सका, वहीं चंद्रगुप्त जै… शासक का निर्माण भी कर सका. तुम हेम जैसी अबोध और मासू… लड़की की हत्या तो कर सकते हो, किंतु किसी चंद्रगुप्त का निर्मा… नहीं. पत्थर को हीरा क्या बनाओगे तुम.

करेंगे चाणक्य से अपनी तुलना और होश नहीं है परिणाम… दुष्परिणाम की कल्पना करने का भी. हेम ने तुम्हें महत्व क्यों न… दिया? लोकलाज जैसी तुच्छ चीज को तुम्हारी तुलना में मह… दे दिया. उसकी इतनी हिम्मत हो कैसे गयी? सजा दो उस… ऐसी सजा दो कि वह कांप उठे. भविष्य में कभी सोच भी न स… तुम्हारी शान में कोई गुस्ताखी करने वाली बात. कभी सिर उठा… तुम्हारी हुक्मउदूली न कर सके. मन ही मन प्रफुल्लित होते हु… तुमने सुना दी सजा. तुमसे बड़ा न्यायाधीश हुआ है आज त… इस दुनिया में? अपराध की तुम्हारी अपनी परिभाषा है. तुम ही… निश्चित करो कि अपराध हुआ या नहीं हुआ. और अगर हुआ तो… किस श्रेणी का, किस स्तर का हुआ. क्या और कितनी सजा मिल… चाहिए उस अपराध की, जिसे तुम, सिर्फ तुम अपराध कहते हो… सब कुछ तय तुम करोगे. हेम क्योंकि शुरू से तुम्हारी हर इच्छा… और हर जिद्द को मानती, पूरा करती रही है, इसलिए तुम्हारे इ… शगल का निशाना भी वही बनेगी.

है तुममें हिम्मत किसी एक आदमी से भी इस घटना पर रा… लेने की? अपने किसी पत्तेबाज, दारूबाज दोस्त से ही पूछकर दे… अगर पूछ सको तो. सरेआम बेपर्दगी का विरोध करके हेम ने क… गलत किया? विरोध भी कैसा? दबी जुबान का विरोध. खुल… तो उस बेचारी ने कभी तुम्हारा विरोध किया हो नहीं. काश, व… ऐसा कर पाती तो तुम्हारे मिजाज इतने ऊंचे नहीं होते, जितने अ… हैं. मगर उसके स्वभाव में यह बात थी नहीं. उसे तो एक ही का… आता था—तुम्हारी पूजा करना, तुम्हें खुश रखना.

तुम्हें खुश रखने की उसकी कोशिश का ही तुमने नाजा… फायदा उठाया. पांच साल में एक बार भी तो लोहा नहीं लि… उसने तुमसे. जो औरत मां बनने के लिए तरस रही हो, उसी… गर्भपात के लिए कहा जाये. मान जायेगी? मानना तो दूर की बा… है, सुनेगी ही नहीं, हाथ ही नहीं रखने देगी. वहां तुम्हें खुश रख… को हर कोशिश हेम ने की जो चाहा, उसने किया. रात को चौंक… उठना, सोते-सोते बड़बड़ाना, अचानक फुक्का मार… रोना. इन बातों को तुमने कभी अधिक महत्त्व नहीं दिया. हे… की दमित इच्छाओं का उसके दिल पर, उसके मस्तिष्क पर प… वाला प्रभाव इन लक्षणों से जाहिर होता था. तुमने कभी इन चीज…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंभीरता से विचार नहीं किया. संयोग मानकर टाल गये.

"मैं ही तुम्हारा सब कुछ हूं. मेरी परवाह करो, सिर्फ मेरी. मैं नाखुश रहा तो दुनिया को खुश रखकर क्या करोगी." तुम्हारे विचार से कितनी दुर्गंध आती है, तुम नहीं समझ सकोगे. हेम समझती थी. यह दुर्गंध उसके दिमाग में घर कर गयी थी. इस का ही प्रभाव था कि वह टूटने लगी थी. मगर एक आस्था थी उसकी, तुम्हारी खुशी में खुश रहना ही सब कुछ है. वह बिना कुछ कहे टूटती चली गयी और तुम नगाड़े बजा-बजाकर, भाले फेंक-फेंककर उसे तोड़ते-छेदते चले गये.

टूटने का यह नाकाबिले बर्दाश्त चरमबिंदु था, जिसे वह ढो नहीं पायी. वह सिर्फ एक घटना का शिकार नहीं हुई है, इस बात को तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए. यह एक सिलसिला था—पांच साल अर्थात् साठ महीने अर्थात् एक हजार आठ सौ पच्चीस दिन लंबा सिलसिला. इस सिलसिले में कितने घंटे, कितने मिनट, कितने सेकेंड होते हैं, तुम खुद ही हिसाब लगा लो. ऐसे करोड़ों हिस्सों में धीरे-धीरे उसको मारा है तुमने. वह क्षण उस सिलसिले का चरम क्षण था कि हेम बेजान होकर गिर गयी, उसके दिल की धड़कनें एकाएक खामोश हो गयीं. वरना उस दिलेर औरत ने मौत को हंस-हंसकर न जाने कितनी बार गले लगाया था. तुम मर्द हो न, पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के अंग. चलो, तुम एक बार नंगे होकर कमरे से निकलकर, सत्रह सीढ़ियां चढ़कर लोगों के बीच बिछे अपने बिस्तर तक आकर बताओ. कर पाओ एक बार ऐसा. तुम नहीं कर सकते ऐसा, ताकयामत नहीं कर सकते. और वही काम जो शक्तिशाली और महान् होकर भी तुम नहीं कर सकते, ऊंची कुर्सी पर बैठकर तुम अकड़ के साथ हेम से कराने पर तुले थे. इस मुल्क में औरत आज भी मर्द के पांव की जूती है.

तुमने आदेश न मानने और तुमसे ज्यादा लोकलाज की परवाह करने के जुर्म में हेम को कमरे में जाकर वस्त्र-विहीन अवस्था में छत पर आने की सजा सुनायी. अपनी शर्म, सकपकाहट, कसमसाहट को ताक पर रखकर तुम्हें खुश करने के लिए हेम यह भी करने को तैयार हो गयी. उसकी इस तैयारी से ही तुम संतुष्ट नहीं हो सकते थे? बिना किसी जुर्म के इतनी बड़ी सजा स्वीकार करने वाली के समर्पण ने तुम्हें थोड़ा भी नहीं पिघलाया? उस अधिकार को, अधिकार कूटने की ललक जो पहले ही तुम्हारी थी, तुम्हारा घमंड, तुम्हारी लोलुपता कहां चैन लेने देते तुम्हें?

बस, यहीं तुम मात खा गये. हेम नहीं लौटी. पहली और दूसरी सीढ़ी के बीच लुढ़की हुई उसकी लाश मिली तुम्हें. छलनी हुआ उसका कमजोर दिल इतना दबाव सह नहीं सका. ढह गया. लंबे इंतजार के बाद तुम नीचे उतरे. तब भी तुम यह सोच रहे थे कि हेम संकोचवश कमरे से बाहर नहीं निकल रही होगी. तुम्हें अपनी मर्दानगी पर चुनौती दिये जा रही है हेम, ऐसा लगता था तुम्हें. सीढ़ियों में से नंगी हेम को गोद में उठाकर, कमरे में तुमने उसकी बेहोशी दूर करने की कोशिश की थी, लेकिन कोई बेहोश हो तो उसकी बेहोशी दूर करो न तुम. उसका खून हो चुका था तब तक. तुमने कर दिया था उसका खून.

और तुम कितने ठंडे खून वाले आदमी हो. हेम को कपड़े पहनाये. रोशनी बुझायी. दरवाजा बंद किया. सुबह तक छत पर अकेले पड़े सोने का दिखावा करते रहे. सुबह आंखें मलते हुए उठे, सब लोगों के उठने के बाद. आराम से कमरे में आये और फिर हाय-तौबा मचायी. तुम्हारी, सिर्फ तुम्हारी वजह से हेम मर गयी, मगर दुनिया का कोई कानून तुम्हें हाथ नहीं लगा सकता. दुनिया का कोई आदमी तुम्हारी तरफ संदेहभरी अंगुली नहीं उठा सकता. तुम्हें लोगों की सहानुभूति मिल रही है. इकतीस साल की भरी जवानी में आखिर तुम्हारी पत्नी की मृत्यु हो गयी है. कौन नहीं दिखायेगा सहानुभूति? एक बात बताओ. तुमने कहीं हेम की मृत्यु की कल्पना पहले ही तो नहीं कर ली थी? दूसरी शादी करने में कोई दिक्कत न आये, यह सोचकर तुमने पिता बनने से किनाराकशी की हो? तुम सब कुछ कर सकते हो. सब कुछ संभव है तुम्हारे लिए. लगभग तय है कि जल्दी ही तुम्हारी शादी के लिए प्रस्ताव आने शुरू हो जायेंगे. तुम थोड़ी उदासीनता का नाटक करोगे. थोड़ी बहुत ना-नू का दिखावा करोगे. फिर इस अंदाज में गोया उस लड़की पर या मशविरा देने वालों पर एहसान कर रहे हो, स्वीकृति दे दोगे. लगभग तय है कि तुम्हारी शादी हो जायेगी. हो सकता है, लड़की खूबसूरत हो, हेम से भी ज्यादा.

लेकिन एक बात याद रखना. सब कुछ हो जायेगा, मगर हेम जैसी लड़की तुम्हें फिर नहीं मिलेगी. तुम्हारी खुशी के लिए मर मिटने का जज्बा हो जिसमें, ऐसी लड़की तुम्हें फिर नहीं मिलेगी. शादी तुम्हारी जरूर हो जायेगी. एक जिस्म तुम्हारे पास होगा जरूर, लेकिन घर ताउम्र तुम्हें काटने को दौड़ेगा. बिस्तर तुम्हें लीलने की कोशिश करेगा. हर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ तुम्हारे गले में अटकने लगेगा. कपड़े तुम्हें निगलेंगे. दिन आग बनकर उगेगा. रातें परछाइयां बन जायेंगी. दुनिया को धोखा दे सकते हो तुम, अपने आप को धोखा नहीं दे सकते. आखिर तुम कैसे भूल सकते हो कि एक नेकबख्त, बेकसूर लड़की के खूनी हो. □

● ए-130, आदर्शनगर, जयपुर-302004

ग़ज़ल

आग को आग से एक बार मिलाकर देखें,
प्यास फिर आग की पानी से बुझाकर देखें.

दिल किसी पेड़ की सूखी हुई डाली तो नहीं,
आओ! एहसास की भट्टी में जलाकर देखें.

ख्वाब महलों के तो हमने भी बहुत देखे हैं,
आब में रेत की दीवार उठाकर देखें.

लुटने वाले की तरह लूटने वाला होगा,
आईना सामने अपने कभी लाकर देखें.

हर घटाटोप अंधेरे में भटकने वाले,
दिल के दरवाजे पे कन्दील जलाकर देखें.

'धूल का फूल' यूं जूड़े में भी टंक सकता है,
गुल ये तहजीब की वादी में खिलाकर देखें.

मुझको जो गैर समझते हैं वो 'आलम' पहले,
अपनी परछाईं को सीने से लगाकर देखें.

▣ लालजी 'आलम' हथगांवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथिली कहानी

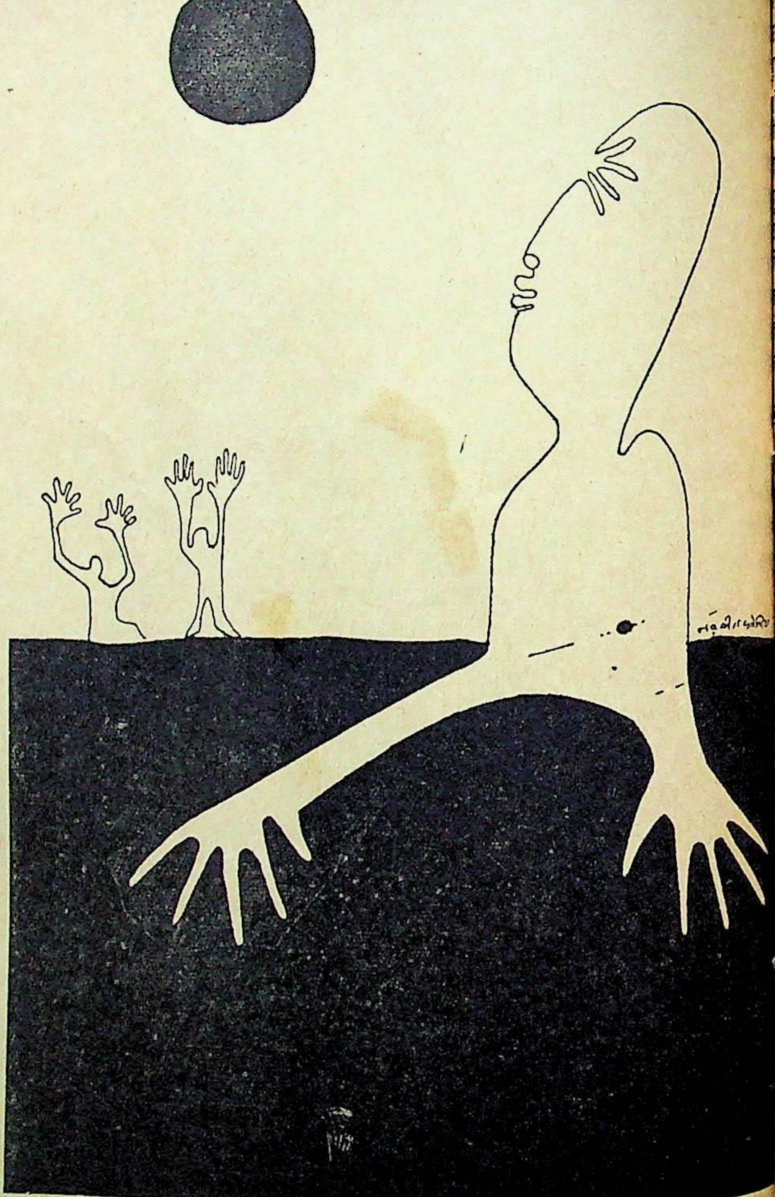

बीच रात में

• शैवाल

एक ने कहा था... "नींद नहीं आती तो तारे गिना करो."

दूसरे ने कहा था... "कोई काम नहीं है तो कौवे उड़ाओ."

जब नौकरी मिली थी तब पैसों की कोई बात नहीं चली थी. शुरू के कुछ दिन तो निष्काम सेवा और फलहीन कर्म की शिक्षा देने में बीत गये. इन उपदेशों के असर न करने पर थोड़ी रकम तय कर दी गयी. लेकिन इस रकम का पता तब चला जब वह वेतन लेने गया.

खजांची ने जब उसके हाथ में रुपये रखे तो देखकर बोला, "इससे क्या होगा सर, खर्चा भी पूरा नहीं पड़ेगा!"

"तो मैं क्या करूं?"

"खर्चा लायक रुपया तो मिलता."

"इतने से ही काम चलाओ."

"यह तो मुश्किल है."

"जानते नहीं हो, जितनी लंबी चादर रहे; पांव उतना ही फैलाना चाहिए. थोड़ा कम खाओ, गम खाओ, हवा पीओ, फिर देखो...बचा भी लोगे."

"पहले से तो कम खाकर कंकाल बन बन गया हूं. गम खाऊंगा तो एक्सरे की रिपोर्ट बन जाने में कोई कमी नहीं रह जायेगी."

"बकवास मत करो. बहुत काम है."

"सर, कुछ तो कीजिए. खर्चा नहीं पूरा होगा तो रातों की नींद हराम हो जायेगी."

"तो तारे गिन लिया करना."

निराश होकर मैनेजर से मिला. वह पहले से ही खार खाये बैठा था. खजांची ने भी शिकायत कर दी थी... कि यह अपना पूरा हक चाहता है.

मैनेजर ना-नुकर करने लगा.

वहां भी नाटक का एक अंश चला.

उसके तेवर बदल गये. पहले तो उपदेश दिया, "भगवान पर भरोसा करो, जितना किस्मत में है उतना ही पाओगे. संसार में सभी एक बराबर नहीं हैं. अभी नये-नये आये हो. तुम्हारे पीछे किसी का हाथ नहीं है... !" अनेक बातें दवा की तरह पिला दी गयीं. अंत में उसने निकाल देने की भी धमकी दी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह घबरा गया. बचने के प्रयास में सारा घूमता रहा. मजबूत हाथ वालों को ड़ता रहा. जिसके पांव मुलायम थे. के पांव में मक्खन लगाता रहा. चिकनी-ड़ी बातें करने लगा. गधे की तरह पनी दुलत्ती भूलकर) नतमस्तक होकर तिकता का आदर्श सुनता रहा. कुत्ते की ह (दांत के पैनेपन को भूलकर) पूंछ ाता रहा. वक्त आने पर बिछावन की ह बिछ गया. किसी को चेहरा दिखाया; सी को पेट. किसी के आगे रोया, किसी गीत गाया, किसी के आगे खीसें निपोरी; कहीं कूल्हा मटकाया. मगर कुछ भी तो हीं बना.

वार सीधे मालिक के पास गया. तम प्रयास में सारी बातें सुन लेने पर लिक ने स्थिर बैठ जाने को कहा. तब ा, "सिनेमा में तो अवश्य रुचि होगी?"

"हां सर!"

"तो तुम्हें एक गीत सुनवाता हूं." और ाडं-प्लेयर पर रिकार्ड चढ़ाकर ऑन दिया.

तीन मिनट तक गीत सुनता रहा. मन लगा. गीत के बोल थे... "कर्म किये जा की चिंता मत कर ऐ इंसान...!" ही मन सोच रहा था....काम हो की उम्मीद है. यह तो दोस्ताना सलूक रहा है.

गीत समाप्त होने पर मालिक ने नजर ी तो वह बोला, "गीत तो मजेदार रहा."

"लेकिन तुम...?"

"सवाल तो पेट का है सर?"

मालिक गुस्सा गया. पूछा, "किसी यन से नाता है?"

"नहीं सर!"

"कम्युनिस्ट हो?"

बात बदलकर वह बोला, "सर, मैं और कहना चाहता था."

मालिक बौखला गया. वह भूंकने लगा, तुम सबको पहचानता हूं. मुझे चकमा दो."

वह हक्का-बक्का रहकर खड़ा हो गया. मालिक आगे बोला, "तुम ऐसे नहीं ोगे. अभी चले जाओ. अभी, या मैं ान को बुलाऊं?"

वह हाथ मलता बाहर निकलने लगा.

मालिक ने अंग्रेजी में गाली दी, "हाऊ इडियट इंडियंस! धर्म तो सब भूल गये हैं."

अगले दिन मैनेजर ने बुलाकर नोटिस थमा दिया—कल अपना हिसाब ले जाओ.

कोई चारा नहीं रहा!

▣

सारी भाग-दौड़ असफल रही. जिनके तलवों में मक्खन लगाया था; उनके तलवे छेद वाले निकल गये. जिनके मजबूत हाथों की मालिश की थी; वे कमजोर निकल गये. सबके आगे रोया, अपना दीदा खोया. लेकिन बना कुछ नहीं.

हिसाब देते समय मैनेजर ने सुनाया, "दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम!"

अपना हिसाब लेकर वापस लौटने से पहले उसने मैनेजर से अंतिम बार कहा, "पहले कम पाता था तब भी रात की नींद हराम थी सर!"

खजांची ने टोका, "तब तो तारे गिनते थे न?"

बात आगे बढ़ायी उसने, "अब तो सर, बेरोजगार भी हो गया!"

मैनेजर ने टोका, "कोई बात नहीं, दिन में कौवे उड़ाना!"

उसके निकल जाने के बाद दोनों ने ठहाके लगाये और एक-दूसरे से कहा, "एक का पत्ता गुल हुआ!"

"मजा आ गया!"

तब से वह दिन में कौवे उड़ाता है... रात को तारे गिनता है!

एक रात तारे गिनते-गिनते भावुक हो गया और सिर झुकाये सड़क पर चुपचाप चलने लगा. चलने लगा और सोचने लगा. सोचने लगा और चलने लगा. लेकिन बाधा हुई. लगा धरती कांप रही है.

नजर उठाकर देखा तो पाया, बगल में एक मूर्ति खड़ी थी, जिसमें एक बूढ़ा आदमी आंखों पर स्कूलमास्टर की तरह कमानीदार चश्मा लगाये, हाथ में लाठी पकड़े, घुटने से ऊपर एक कपड़ा लपेटे चलने के मूड में खड़ा था. नजर नीचे झुकी थी. सिर पर बाल नहीं थे. ऐसा मालूम होता था सारे शहर की चिड़ियां यहीं बीट करती हैं. उसके पांव के नीचे काले-काले बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—सत्यमेव जयते!

उसी की मूर्ति कांप रही थी.

मूर्ति की जड़ पर नजर गयी तो कौतूहल हुआ. झुककर देखा तो पाया किसी का सिर बाहर निकला है. बाकी धड़ मूर्ति के नीचे दफन है. उस धराशायी ने अपना परिचय दिया—मैं सत्य हूं! और फिर पीड़ा से करवट लेने की चेष्टा की तो मूर्ति कांपी!

वह सत्य को कब्र से बाहर निकालने को तैयार हुआ तो उसे सलाह दी गयी.... "किस फेर में हो? मुझे मेरी हालत पर छोड़कर अपना काम देखो!"

"क्यों? मैं ऐसी बातें नहीं सह सकता?"

"देखो, मुझे बचाने वालों को एक अंधेरी गुफा में डाल दिया जाता है. जहां से वह कुछ दिनों बाद देश के नक्शे में बदल दिया जाता है. बेकार जान दे रहे हो."

"ऐसा कैसे होगा?"

"ऐसा ही होता आया है. इस जगह पर किसी दूसरे की मूर्ति थी. उस समय भी मैं इसी तरह दफन था. तब नारा दूसरा था. जब इस बूढ़े का शासन हुआ तो यह भी मूर्ति बन गया. नारा भी बदल गया. पर मैं मुक्त नहीं हुआ. मेरे पीछे बहुतों ने जान गंवायी. तुम उन शहीदों में मत शामिल होओ. चाहो तो उनका बदला लेकर मुझे मुक्ति दिला सकते हो."

निराश होकर चलने लगा तो मूर्ति पूर्ववत् कांपने लगी. एक उड़ता हुआ उल्लू उस पर आकर बैठ गया.

▣

थोड़ी दूर आगे बढ़ा तो देखा—दूर से एक सफेद आदमी शेर जैसी चाल से चलता आ रहा है. चेहरा शेर-सा ही लग रहा था. हाथ में खूनी नाखून थे. उसकी बड़ी-बड़ी मूंछें थीं, जो सड़क पर घिसटती आ रही थीं. उसके हाथ में एक पुतला था.

पास आने पर देखा, उसकी पूंछ नहीं, उसके पीछे समर्थकों का लंबा सिलसिला है. सबकी आंखें बंद हैं, ललाट पर जय-जयकार का नारा लिखा है. कौतूहलवश एक से उसने नाम पूछा तो कुछ कहने के बदले उसने जेब से चम्मच निकालकर दिखा दिया. गौर से देखने पर मिला—सबकी जुबान पर ताला लटका है. वह विचित्र आदमी इस रवैये पर मुस्करा उठा और रुक कर बोला, "क्या देख रहे हो?"

"तुम कौन हो? ये कौन हैं?"

"मैं? मुझे नहीं पहचाना? मैं ही देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

का नियंता हूं."

"कैसे मान लूं?"

"देखते नहीं मेरे पीछे बहुमत है!"

"लेकिन सबके मुंह पर तो ताले जड़े हैं."

"ये ताले केवल जय-जयकार के वक्त खुलते हैं. बाद में फिर ठोक दिये जाते हैं."

"यह तो गलत तरीका है."

"तुम प्रतिक्रियावादी हो? विदेशों से पैसा मिलता है सत्ता पलटने का?"

"नहीं, मैं बेरोजगार हूं. दिन में कौवे उड़ाता हूं और रात को तारे गिनता हूं."

"मुझसे मुलाकात नहीं हुई है शायद, जब मेरी शक्ति पहचानोगे तो तुम भी वही हो जाओगे जो पीछे वाले हैं. बोलो, क्या चाहते हो?"

"अपना हक!"

"नक्सलवादी हो या कम्युनिस्ट?"

"शिक्षित बेरोजगार!"

"तुम ऐसे नहीं मानोगे. इधर देखो."

उसने अपने कुरते की एक जेब में नजर डालने का इशारा किया. उसमें बहुत सारे कल-कारखाने चल रहे थे. वहां मशीन और आदमी में कोई भेद करना कठिन था. सभी एक ही गति से कार्यरत थे. यह दृश्य हटा तो एक बड़ा स्ट्रांग-रूम का दृश्य उभरा, जिसमें सोने-जवाहरात, बहुमूल्य सामान और करंसी नोट भरे थे.

"अब दूसरी जेब देखो."

इसमें एक बड़ी प्रयोगशाला थी, जहां लोग शोध में लगे थे. सभी तल्लीनता से अपना काम कर रहे थे. दूसरा दृश्य आया तो कुछ ऐसे आदमी आये जिनमें कुछ जोर-शोर से कविता-पाठ कर रहे थे, कुछ नाटक खेल रहे थे, कुछ फिल्म बना रहे थे, कुछ पत्रिकाओं के दफ्तर में बैठे गुफ्तगू कर रहे थे.

वह आदमी बोला, "अब मत देखो. जानते हो कौन थे ये लोग?"

"नहीं."

"क्या कहा, नहीं? अरे, ये ही तो हमारी संस्कृति के गायक हैं, उन्नायक हैं. ये सारे के सारे 'एवार्ड विनर' हैं."

"होंगे."

"होंगे नहीं, हैं. ऐसे जितने भी होते हैं न, वे ही इतिहास में आते हैं."

वह सोच में पड़ गया.

कुछ देर बाद वह आदमी बोला, "अब पहचान लिया न मैं कौन हूं?"

इक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल,
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक!

आदम और हवा की गंध के साथ जन्मे इस इंसानी जज्बे पर आखिर अमीरी का ही कब्जा क्यों हो गया?

पढ़िए—सवाल दर जवाब देता सारिका (1 जनवरी, 81) का

प्रेमकथा विशेषांक

उस विचित्र आदमी ने यह पूछकर अपनी ऊपर वाली जेब से एक मोटी-सी डायरी-नुमा कोई चीज निकाली और दिखाते हुए पूछा, "जानते हो, यह क्या है?" और उसके पन्ने पलटने लगा.

उसने देखा, उसके पन्ने बीच-बीच से फटे हैं और वहां पिन लगाकर कई दूसरे-दूसरे पन्ने जोड़ दिये गये हैं. कई पन्ने तो सारे के सारे काले रंग से पुते हैं. कुछ न समझने पर बोला, "डायरी होगी और क्या?"

"जा रे बेवकूफ, यह व्यवस्था की किताब है. मेरे देश के नागरिक होकर इसे नहीं पहचानते? अभी मैं संसद में जाकर शिक्षा-प्रणाली पर प्रश्न उठाता हूं." और वह खामोश हो गया.

उसने सहसा एक पुतले की ओर निगाह फेंकते हुए पूछा, "यह क्या है?"

"मेरे विरोधी का पुतला."

"इससे अब तुम आगे हो न?"

"हां, तभी तो यह पुतला बन गया है."

"मगर पुतला ही तुमसे आगे है, गौर से देखो?"

उसने गौर किया, सच में उससे आगे उसके विरोधी का पुतला है. उसने झट अपने पीछे वाले को थमा दिया. पीछे वाले ने अपने पीछे वाले को दिया. सबसे पीछे वाले ने अपने पीछे किसी को न पाकर सड़क पर फेंक दिया.

वह आदमी काफी प्रसन्न हुआ और पूछा, "बड़े तेज मालूम पड़ते हो! इंपोर्टेड ब्रेन है क्या?"

"नहीं, सौ प्रतिशत भारतीय है."

"ऐऽऽ! भारतीय भी इतने तेज होते हैं? मैंने तो आज जाना. . . ."

तभी जोरों से गड़गड़ाहट हुई. दोनों ने आकाश की ओर देखा—पांच सफेद कबूतरों का पीछा तीन बंदर कर रहे थे.

वह विचित्र आदमी चलते हुए बोला, "मैं जा रहा हूं. ये तो आपस में ही हि[illegible] पर उतारू हैं."

वह उसी दिशा में पूरी जमात के साथ बढ़ने लगा, जिधर कबूतर गये थे. उसने आगे बढ़कर पूछा, "फिर कब मुलाकात होगी?"

"पांच साल पर या जरूरत हुई तो उससे पहले भी."

कारवां गुजर गया. कुछ क्षण बाद दो-तीन देहाती-से लगने वाले आदमी सड़क पर आ गये और थमकर सांस लेने लगे. सभी जोरों से हांफ रहे थे. थोड़ा सुस्ता लेने पर वे उसके पास आये और पूछा, 'लेताजी' को देखा है?"

"लेताजी?"

"हां, लेताजी. इधरे आये हैं. पीछे-पीछे बहुत आदमी रहे होंगे."

तभी दूसरा आदमी सफाई देने लगा, "मालिक, हम लोग नेताजी को खोज रहे हैं. यह साफ-साफ नहीं बोल पाता है, इसीलिए 'लेताजी' कह रहा था."

उसने दोनों को रास्ता दिखाकर बताया, "वह सीधे गये हैं तुम्हारे लेताजी. कुछ लेते गये हैं क्या?"

"सब कुछ!" कहते हुए दोनों उसी ओर जाने लगे.

तभी कंधे पर उसने किसी के हाथ का स्पर्श महसूस किया. पीछे मुड़कर देखा, एक सिपाही था जो कह रहा था, "[illegible] बड़बड़ा रहा है इतनी रात को! भागता है यहां से कि नहीं?"

अनुवादक : अजय ब्रह्मात्मज
मिश्र टोला, दरभंगा (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

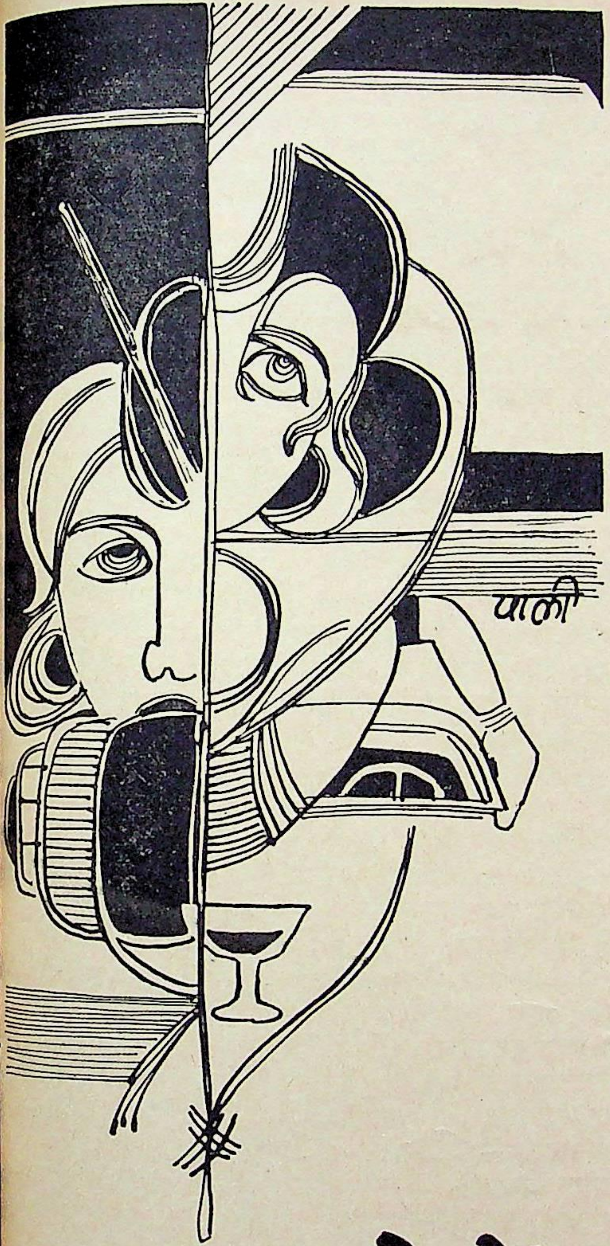

सभ्य लोगों का दर्द

• रंजन त्रिवेदी

लंबी-लंबी कोरों वाली आंखें, समेटी हुई भौहें, हवा से खेलते सूखे बाल तंबियायी लंबी गर्दन पर छितरा रहे थे. जब वे घूमतीं तो सफेद नाइटी कभी पीठ के पठारों के बीच दूर तक चली गयी ढलान तक गहरी पंक्ति को बाहर फेंक जाती. आईने के सामने गहरी सांसें ले बैठतीं तो देहचिंता में संवारी पहाड़ियां चांदनी से ढंकी लगतीं. मिसेज सिंह पता नहीं कितने कोणों से आईने के बीच नाइटी की चुन्नटों के पार अपने को देख लेतीं और हर बार पतले-पतले होंठों पर दांत गड़ाकर उन्हें लाल कर देतीं और तत्काल ही मुड़ जातीं. आज की मार्केटिंग में मिसेज सिंह दोनों के बीच टॉप करना चाहती रही हैं. मिसेज रमण को तो वैसे ही छरहरी होने का गुरूर है और मिसेज आशुतोष अपने को सदाबहार माने बैठी हैं. आज वे दोनों के बीच आंखों ही आंखों में उठ जाना चाहती हैं.

दोनों तैयार होकर सोफे पर आकर बैठ गयी थीं, और वे मिसेज सिंह को और आईने को देखे जा रही थीं. सुगंधित लहरें त्रिकोण से बाहर नहीं जा पा रही थीं. कभी-कभी बिंब चौंक जाते, चुन्नटें स्थिर हो जातीं. मिसेज सिंह को लगा कि चुप रहने से आंखें कहीं न कहीं स्थिर होने को विवश हो जायेंगी. अतः वे बालों को हल्का-सा झटका दे बोलने लगीं, "चुप रहने वाली औरतें जीना नहीं जानतीं. वह जिंदगी भी क्या जो मनहूसियत में कटे, किसी दरिया किनारे बने कॉटेज में कटे या किसी लायब्रेरी के कमरे में कटे, सारी जिंदगी अपने को समेटे रहने में कटे. उसी में घिरे रहो, दिखो न दिखाओ, बोलो न बतियाओ—यह सब अपने से हो ही नहीं सकता. चुप रहने वाली स्थितियां जहां एक ओर हारने की बात कहती हैं, उस सबको मांबदौलत कबका झुठला चुके हैं. रही, सुपरइंटैलिजैंट बनने की, चुप रहने की, कम हलचल करने की बात, वह सब इस उम्र को गंवारा नहीं. कटने, हटने, बचने, हिचकने की स्थितियां कभी आयें ही नहीं—यही मालिक से दरख्वास्त रहती है. चुप्पीपन अजीब हालातों के बीच, सच कहती हूं, मुझे तो कुसूरवार बनाकर खड़ा देता है. पहाड़ी झरने-से उछलते-कूदते, बढ़ते-छूते, खिलखिलाते बहते रहो बस, पत्थरों को शक्ल देते चलो, काफी है."

मिसेज सिंह एक सांस में अपनी बात कह गयीं और अपने बालों को ब्रश करने लगीं. सोफे पर बैठी रमण और आशुतोष को उन्होंने बारी-बारी से देखा. वे मोनालिसा स्टाइल में मुस्का रही थीं. अवयवों की सुघड़ता कहीं कोई खिचाव तो उनके चेहरों पर नहीं दे रहे? देंह को जरा-सा झटका मारकर वे फिर ब्रश करने लगीं.

अब तक वे ही बोल रही थीं, बिंब नहीं बोल रहे थे.

दोनों की कारें, दोनों के साहब ऑफिस ले जाते हैं. सिर्फ मिसेज सिंह की ही कार साहब को पहुंचाकर बंगले पर लौट आती रही हैं. दोनों मन मसोसकर रह जातीं. मिस्टर सिंह कितने अच्छे हैं जो इन्हें कहीं नहीं टालते, और एक हमारे हैं. कार के बिना ये चलेंगे नहीं तो अफसर कैसे कहलायेंगे? इसी मसले को लेकर जब भी बात बढ़ती तो तीनों होटलों में खाने लगते या दौरों पर निकल जाते. अब आंसुओं का असर कम हो गया है. और मिसेज सिंह हैं कि अपना गुर बताती ही नहीं हैं. हर जगह ए-वन रिसपाँस चाहती हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिसेज सिंह ने दीवार पर टंगी घड़ी को देखा. वह बंद थी.

"रौनक तो शाम को ही होती है. फिर हमारे जाने ही से तो वह बढ़ती है. रौनक का इंतजार शाम को हो सकता है, शाम का हमें नहीं." उन्होंने बड़ी अदा से मुस्कराते हुए यह बात कह दी. घड़ी देखने वाली आंखों को बेअंदाजा किये आईने के पार देखने लगीं. वहां चुन्नटें दूधिया झरने की लहरों की तरह थिरक रही थीं.

मिसेज आशुतोष ने अब बायें पैर पर अपना दायां पैर रख लिया था. उनके जाली वाले सैंडिलों से उनके रक्तवर्णी पैरों के झूलते पंजे आलते के फीके चिन्हों को विदा दे रहे थे. लाल किनारे वाली महीन कोसे की हल्के पीले रंग की साड़ी उनकी देह से खूब मैच कर रही थी. लगता, खुशबुओं की घाटी में पैक देह का अरुणोदय साड़ी के रैपर में फूटा पड़ रहा है. अरुणाभा आकाश के लिए मचल रही है. किशलयी होंठ आंखों के विहंगों की नन्हीं उड़ान भर ही से कसमसा जाते पलकों की झाड़ियों में प्रभाती गुनगुनाते मिलते. जिसे कनखियों से मिसेज सिंह रह-रहकर देख लिया करतीं.

मिसेज सिंह को बातों को वे सुन रही थीं. उन्होंने अनुभव किया कि सारी बातें उन्हीं से कही गयी हैं. मिसेज रमण बीच में रखे टेबुल पर अपने दोनों पैरों को रखे उंगलियां नचा रही थीं.नाखूनों की जगह लगता, छोटे-छोटे मूंगे रख दिये गये हैं. श्वेत कमल-सी गौरांग काया अंगूरी रंग की शिपॉन की साड़ी में बंधे हुए जल की तरह लग रही थीं. माथे पर हरी टिकली और पन्ने के टॉप्स जूड़े में खुंसे हरे गुलाब से लग रहे थे.

"तुम्हारी बात सही है मिसेज सिंह. मैं भी सहमत हूं. खिल-खिलाते झरने का सुख और है. गुमसुम बने रहने से, झील-से बने रहने में क्या तुक है? झरने की खिलखिलाहटों से नये-नये दरख्त न झूमने लगें या झुक-झुककर यह न देखने लगें कि इतनी प्यारी आवाज, लहर, सुगंध आयी कहां से, तो वे भी फिर किस काम की, जो खिचाव न रच सकें." कहते-कहते मिसेज आशु-तोष ने पहले मिसेज रमण की ओर फिर मिसेज सिंह की ओर देखा. वे अभी भी धीरे-धीरे बालों में ब्रश किये जा रही थीं. इस समय उनकी आंखों में यही भरा लग रहा था कि देखो भई, उम्र चालीस-बयालीस की जरूर होने को आयी, पर दो बच्चों के बाद भी कहीं शिकन नहीं आयी. कभी बच्चों को लेकर हम बाजार भी गये हैं? यह चेहरा लावण्य की ही बात नहीं करता, किसी भी कोण से इस मूर्ति को देख लो, चुस्त मांसलता को तराशने वाले हाथ खजुराहो या कोणार्क की ही याद ताजा कर जाते हैं. देह को जरा ध्यान से संभालो. रजनीगंधा-सी रात को ही महकने का सुख नहीं, वरन् सूरजमुखी-सी बेखौफ होने का अवसर भी मिलता है. हर देखने वाली निगाह को कभी सुगंध, कभी किरण मिल ही जाती है. फिर मैं तुम लोगों की ही निगाहों में नहीं अटकती, न जाने कितनी हूक करने को मचल जाती हैं. जरा रुककर मिसेज सिंह ने सिर को हिलाया और ब्रश को झुलाते हुए बोलीं, "मुझे यह जरा भी अच्छा नहीं लगता कि उठते-बैठते जब देखो तब क्लबों के चर्चे ही किये जायें और यह बताने की कोशिश की जाती रहे कि वे ही क्लब की शोहरत हैं. अगर वे क्लब में न जायें तो वहां बहारें ही न आयें. जबकि हकीकत यह होती है कि ये सब क्लबों की सीमित जिंदगी में इसलिए पहुंच जाती हैं कि इन्हें बाहर खुली जगह में कोई पूछने वाला ही नहीं होता. एक ढंग से ये अपने अवमूल्यन को छिपा ले जाती हैं. कैसे कहें कि बुढ़िया हो चली हैं. बिकनी पहनकर स्वीमिंग पूल पर या छतरी के नीचे गॉगल लगाकर देह की वर्जिस करते हुए बड़े-बड़े नामी-गिरामी जहाजों को लंगर डालने को विवश करने के लिए सर्कस करती रहें और खिसियाकर पति या पुराने प्रेमी को डांटें, उससे कुछ होता नहीं. मगर यहां तो देह को कुछ भी पहना दो फूटने लगता है, जैसे देह में चंदन हो, छूते ही महकने लगता है. होना चाहिए बस. नहीं तो कुछ भी पहनाओ, कुछ उभरता नहीं. फिर चाहे नाभिदर्शना साड़ी पहन लो, लो कट के स्लीवलेस ब्लाऊज पहन लो, पारदर्शी मैक्सी या मिनी स्कर्ट पहन लो, बुढ़िया देह कहीं स्पार्क नहीं करती. खुले में आने की इनकी हिम्मत ही कहां है! बैठे-बैठे ताश खेलेंगी, वैनिटी पर्स से आईना निकाल टच देती रहेंगी या फिर सिगरेटें पी-पीकर धुएं के साथ आहें छोड़ती मिलेंगी. पेग पर पेग लेने वाली तो इसी उपेक्षा के गम को गलत करती मिलेंगी. जो देह स्पार्क नहीं कर पाती, वह थम जाती हैं, बंध जाती हैं."

कहकर उन्होंने पास बैठी मिसेज रमण की ओर बड़े गौर से देखा. वह मजे से बातें सुनती हुई टेबुल पर रखे अपने पैरों की उंगलियां नचाये जा रही थीं. उनके चेहरे पर कहीं कोई प्रतिक्रिया नहीं थी. इसके बावजूद उनकी नाक का हीरे वाला लौंग किरण के छूते ही चमकने लगता. जिससे गालों पर जमें गुलाब लगता मंद-मंद मुस्कराये जा रहे हैं.

▣

मिसेज सिंह उन्हें भी छेड़ती रही हैं, लेकिन उनकी इस बात का अभी तक वे दोनों जवाब नहीं दे सकी हैं कि—आप लोग दो-दो बच्चों के बाद भी अपने को मेन्टेन करने का गौरव हासिल किये हुए हैं और एक हम हैं कि तीन ईशू हो जाने के बाद भी देह में कहीं कोई लथड़ने की, मांस लटकने की नौबत नहीं आयी है. अपने राम तो रेस्ट पीरियड में बाकायदा आसन कर लिया करते रहे हैं, मालिश कर लिया करते रहे हैं और दिनभर ताजा बने रहते हैं. वैसे आसन स्कूल के दिनों में सीखे थे, काम अब आ रहे हैं. देह के तनाव, कोण, और घुमाव आज भी किसी षोडशी की चुनौती स्वीकार करने में हिचकते नहीं. उन्होंने उन्हीं के बंगले में मिसेज रमण से जब कह दिया था कि हम लोगों को भी कोई संस्था-वंस्था बना लेनी चाहिए. जनसंपर्क बढ़ेगा. जानने वाले, चाहने वाले बढ़ेंगे. नया शगल रहेगा. राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र के लोग भी इस ओर झुकेंगे. हमें कुछ करना-धरना भी नहीं पड़ेगा. अफसरों की बीवियों के नाम पर संस्था में सभी कुछ जुट जाया करेगा और हम बैठे-बैठे सब कुछ पा लिया करेंगे.

वे अपनी बात पूरी नहीं कर पायीं थीं कि मिसेज रमण बोलने लगी थीं. उनके हीरे की लौंग उस समय भी चांदी की रेखाओं को गालों पर दौड़ा रही थीं. माथे पर क्षणभर को लकीरें इकट्ठी हुई थीं और जैसे आयी थीं वैसे ही लौट गयी थीं. उनके किशमिशी होंठ भीगे से लग रहे थे और वे बोलने लगी थीं, "नहीं मिसेज सिंह, नहीं. हमें संस्था-वंस्था में विश्वास नहीं करना चाहिए. हम लोगों में घूमने-फिरने का बड़ा हौसला है, हम बंधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिंदगी के बिल्कुल आदी नहीं हैं. हमें वहां लोग भजाने आने लगेंगे. इधर चंदा देंगे उधर वसूल करेंगे. अभी हमारी कौन उमर हो गयी है. हम तो जहां खड़े हो जायेंगे, वहीं संस्था हो जाया करेगी. सहयोग बनाये रखिए, यही बहुत है. फिर हमारे पतियों ने हम पर बड़ी रहम की है. उनकी नेकनीयती पर जुल्म नहीं ढाना चाहिए."

कहते-कहते उन्होंने आंखें झपका लीं थीं और फिर बोलने लगी थीं, "उन्होंने हमें खिला-खिलाकर पलंग या गद्दा नहीं बना दिया है कि पड़े रहो. न सरको न हिलो. हां, अगर ऐसी स्थिति आ जाये तो फिर संस्था के बारे में सोचा जा सकता है. पलंग या गद्दे की तरह पड़े रहो, ताश खेलो, सिगरेटें पियो या घंटों प्यालों को घूरते रहो और चलने या उठने की नौबत भी आयी तो सांसों को ब्लडप्रेशर की सीमा तक पहुंचने से रोकने की लाचारी उठाओ. हमारा छरहरापन बरकरार रहे, बस. हमें मोटर ढोती रहे और बाद को ब्यूटी सैलून में हांफती नजर आओ, कमर और नितंबों पर पट्टों की घिसवाई स्वीकारो, फीगर की चिंता में जिंदगी का कीमती वक्त खराब करो. अभी हम लोगों को उस स्थिति में पहुंचने में काफी देर है."

◘

वे मिसेज रमण की बात का जवाब नहीं दे सकी थीं. उनकी कही बात में काफी असलियत थी. वे तीनों सिविल-लाइन में इसीलिए चर्चित भी रही हैं. ये बिना कहीं जाये ही हर की जबान पर है. उन्होंने बालों को स्प्रे किया. जिससे ढेर सारी खुशबू कमरे से मचलती हुई बाहर तक चली आयी. आई-ब्रो को उठाते-उठाते उन्होंने मिसेज रमण की ओर फिर देख लिया. मिसेज आशुतोष अपने छोटे से रूमाल से माथे पर पफ करने लगी थीं. लगता, जिंदगी के उजाले एक के बाद एक चेहरे पर जम गये हैं. पहाड़ियों पर उगने वाला सूरज हरदम तरोताजा है.

मिसेज रमण कनखियों से मिसेज सिंह की निहारती आंखों का अंदाजा ले चुकी थीं. उन्होंने अपनी तो कह दी थी. यह गनीमत है कि वे खोखली या छिछली मॉड बनी औरतों की तरह डींग नहीं मारतीं और न ही फिल्मी पत्रिकाओं के बीच अपने को विद्वान घोषित करना चाहती हैं. कभी वह जोर से बोलती नहीं दिखी हैं. वह पैरों की उंगलियां नचाना रोककर कहने लगीं. उनकी आंखों की कोरें दूर तक उभरती चलीं, वे जरा-सा कहकर रुक गयीं, "तुमने सुना, आजकल पीछे के बंगले वालों का शगल..." मिसेज आशुतोष भी चौकन्नी होकर उनकी ओर देखने लगीं. मत्स्यनयनों में खलबली मच गयी. मिसेज सिंह ने खड़े होते-होते नाइटी को जर्क दिया. सारी चुन्नटें सनसनाकर ठहर गयीं. वे भी देखने लगीं, आखिर कौन-सा शगल है, कौन-सी बात है? सुती हुई देह की रक्ताभा छवि चुन्नटों के पार ठीक वैसी ही लग रही थी, जैसे कि परदे के पीछे दीप शिखा निष्कंप खड़ी कर दी गयी हो. जहां कहीं छुये जाने का अंदेशा नहीं है.

मिसेज रमण कहने लगी थीं. उनके गाल में पड़ जाने वाला गड्ढा हंसने में ही उभरता था, बोलने में नहीं, पर कहते समय उन की आंखें हमेशा चमकतीं, पानीदार बनी रहतीं. "जो देखो वही उन बातों को हम तक पहुंचा देना चाहता है कि पीछे की लाइन वाली मिसेज उप्पल अक्सर मिस्टर तनेजा के यहां चली जाती हैं और मिसेज तनेजा किसी और के यहां चली जाती हैं. वह बाघा नहीं बनना चाहतीं, समझ से काम लो...." दोनों बड़े गौर से मिसेज रमण की ओर देख रही थीं. मानो कह रही हों, रुक क्यों गयीं, आगे क्या हुआ है, कहो न?

वह कहने लगीं. टॉप्स की हरीतिमा किरणों के कारण गर्दन पर दूसरे गुलाब का भ्रम दे रही थीं. वे अपनी बात को बड़े विश्वास के साथ रखती लगीं—"भई, इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं. किसी का भी एक-सी मिठाई खाते-खाते जी ऊब जाता है. मरद तो किसम-किसम की जलेबियां—चमचम चख आते हैं, खा जाते हैं. हमने ही कौन-सा कसूर किया है? फिर अगर हम ही दूसरे मरद के साथ रह आयें, सो आयें, तो क्या फरक पड़ता है? कोई क्लबों में, कोई कॉटेजों में, फ्लैटों में या कूपों में स्वाद बदल लेता है, क्या अनहोना है? फिर हर बड़े शहर में वीमन एक्सचेंज क्लब इसी स्वाद की एकरसता को तोड़ने के लिए ही तो बने हैं. यहां वहां न जाकर सीधा एप्रोच तो हो जाता है. सभी स्वाद बदलने के हिमायती हैं, मॉडर्न हैं, तो फिर क्यों किसी पर अंकुश? सोसायटी ही फ्री होने जा रही है तो मर्यादा का ढोंग कब तक? कहीं कोई फर्क पड़ता ही नहीं. फिर एक रात में बनता-बिगड़ता ही क्या है. इस तकिये के सहारे सो गये या उस तकिये के सहारे, कौन-सा कहर टूट पड़ेगा!" इतना कहने के बाद मिसेज रमण ने गौर से दोनों की ओर बारी-बारी से देख डाला. मानो वे इस बात का असर दोनों के चेहरे पर खोजना चाह रही थीं. मिसेज आशुतोष की रूज तो गहरी दिखाई पड़ने लगी थी. उनकी आंखें पलकों को बार-बार झपकने से रोक भी नहीं पा रही थीं. आंखें पढ़ ली जायें, उसके पहले ही वहां व्यवधान उपस्थित किया जा रहा था, लेकिन मिसेज सिंह वार्डरोब की ओर जाने के लिए तैयार होने के बावजूद बात को सुन रही थी. ग्रीक कन्याओं-सी पतली नाक पर लगता पसीने से धनुषी वृत्त बना दिया था, गालों पर क्षण भर को संगमरमरी खिंचन आयी और चली गयी थी. होंठ कसने को हुए, पर दांत से दायें होंठों के कोने को दबाते हुए वह हंसी को बिखेरने न देते हुए सधे अंदाज में बोलने लगीं, "बात ये है कि इनकी भूख ज्यादा है. स्वाद बदलने की बात तो सिर्फ एक बहाना है. मैं कम से कम इन दोनों को नजदीक से जानती हूं. मिस्टर उप्पल हों या मिस्टर तनेजा, दोनों उम्र के हिसाब से पत्नी के लिए कोई मायने नहीं रखते और ये दोनों अभी भी भरी-पूरी, चढ़ी-खिंची रखी हुई हैं. कहीं से भी इन्हें खनकाकर देख लो, ये चांदी के कलदार रुपये की तरह किसी भी निकष के पत्थर पर खनक सकती हैं. इनकी आंखों में तुमने भी देखा होगा, एक चुनौती झांकती होती है, खनकने के लिए निकष की खोज होती है. भूखी सांडनी की तरह इनका रंभाना उप्पल और तनेजा की डैफिशियंसी के आगे चीत्कार बन जाता है. इसमें कुसूर किसी का नहीं, तकलीफ उठाने वाला कमी को पूरा करने के लिए मुक्ति चाहेगा ही, प्रयास करेगा ही. कहकर वह अनामिका से जरा गर्दन की चुनचुनाहट को सहलाकर फिर बोलने लगीं, "तुम्हें मालूम होगा कि पान और सुपारी का बैलेन्स न हो तो खाने में मजा नहीं आता. जरा भी संतुलन बिगड़ा नहीं कि उससे मुंह ही नहीं चिरता, बल्कि दूर तक मन चिरता चला जाता है. पान का जायका —सुगंध, बदबू और हताशा में बदल जाता है. सड़ी सुपारी और बंगला पान का भी कोई रिश्ता होता है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उनके चेहरे पर कनेरी मुस्कान बिछ गयी थी. दांत को फिर होंठ पर गड़ाते-गड़ाते वह बोल गयीं, "पान का भी तो मिजाज है भाई, सड़ी सुपारी की व्यथा पान क्यों सहे?"

मिसेज आशुतोष पहले तो थोड़ी देर गंभीर बनी रहीं, फिर मंद-मंद मुस्काने लगीं. मुस्कान उनके चेहरे से लहर की तरह उभरती लग रही थी और वे जरा देर को सोचने लगी थीं. मिसेज सिंह भी कौड़ी लाती हैं तो बड़ी दूर की, किस अंदाज से कह गयीं.

मिसेज रमण भी लगा, मुंह से मुस्कान बिखेरने लगी हैं. मिसेज सिंह की बात के लिए वे भी लगा क्षण भर को खुश हो गयी हैं. वह पैर की उंगलियां नचाने लगी थीं, लगता मूंगे एक वर्तुल में लीला कर रहे हैं. मिसेज सिंह वार्डरोब की ओर बढ़ने जा ही रही थीं कि मिसेज आशुतोष कहने लगीं, उनके होंठ ताजे लग रहे थे, "आपकी बात माने लेते हैं भाई, हमारे बीच कोई अनमेल या अनबैलेंस्ड नहीं है और कोई दिखने में गलत भी नहीं है. नहीं तो जलने वाले कहने ही लगते, कुछ दिखाने लायक चेहरे में, देह में तो है नहीं, तो तन उघाड़-उघाड़कर दिखाये जा रही हैं, अरे चेहरा नहीं खींच पाता तो स्लीवलैस कंवली-बंवलीनुमा बांहें ले लो, सुराहीनुमा गर्दन ले लो, उस पर फिट अजंताई जूड़ा ले लो या मिनी ब्लाऊज की फिटिंग में कसमसाये जा रहे पीठ के सुचिक्कन पठार ले लो, मांसल शंखो के जयघोषों की निर्द्वंद्वता ले लो, नाभिदर्शना साड़ी से खुले देह की आवाज ले लो, आंखों ही आंखों से जो चाहे ले लो, जो कुछ दिखने को है, वह सब देने को ही है," कहते-कहते एक गहरी सांस छोड़ी और फिर बोलने लगीं, "यह अच्छा ही है कि हमारे साथ ऐसा कुछ नहीं है. हमें इस स्थिति पर उतरने की जरूरत नहीं है. यहां तो फीगर ही ऐसे हैं कि जहां कहीं खड़े हो जाओ, पता नहीं कितनी चुनचुनाहटें, चेहरे पर, गर्दन पर, बांहों पर रेंगने लगती हैं.

▣

मिसेज सिंह ने ब्लाऊज और साड़ी को निकालकर दरवाजा बंद कर दिया. नाईटी उतारने ही जा रही थीं कि पूछ बैठीं, "चाय यहीं मंगवा ली जाये कि रेस्त्रां. . . ."

मिसेज रमण बीच ही में बोलीं, "अरे, आप भी क्या गजब करती हैं, रेस्त्रों की आंखों को भी सुकून चाहिए, इंतजार करती आंखों का तो खयाल करिए. हमारे कद्रदान कहां नहीं हैं?"

मिसेज आशुतोष ने रमण की बात को संवारा, "हमारे कद्रदां कम हुए ही कब हैं? जब हम कॉलेज में थे, पता नहीं कितने गेट पर, नीम के झाड़ के नीचे, लॉन पर, सीढ़ियों पर, गैलरियों में घंटों इंतजार किया करते थे. हर कोई लगता निगाहों ही निगाहों में उठा लेना चाहता है. हर कोई चाहता कि एक इंच मुस्कान न सही, एक सेंटीमीटर ही दे दी जाये, और जब कुछ नहीं मिलता तो मैं आज भी कह सकती हूं, गहरी छोड़ी जाती सांसों की प्रतिध्वनि रात को जगा जाती है. तरसती आंखों का सुकून आज भी भूले नहीं भूलता. हर कोई शिकायत करता कि फलां लड़के ने उसे आज बुरी तरह से घूरा, लेकिन सच था कि हर कोई उस घूरे जाते क्षण का मोहताज था. उसी क्षण की प्राप्ति के लिए बन-ठनकर चली आया करती थीं. अगर देखने वाले न हों तो दिखाने वाले ही क्यों आयें? किसके लिए बने-संवरे, कहीं घूरे जाने से वंचित रह

लघुकथा

स्थायी

▣ सुरेश अवस्थी

दीनू उस दफ्तर में पिछले दो वर्षों से चौकीदार के रूप में काम कर रहा था. अब तक उसकी नौकरी स्थायी नहीं हुई थी. उसे किसी भी समय निकाले जाने का डर था.

उसी दफ्तर के एक चलते-पुरजे बाबू से उसने मिन्नत की, "बाबूजी, कोई ऐसा जुगाड़ फिट करो कि मेरी नौकरी पक्की हो जाये. मैं आपका एहसान जिंदगी भर नहीं भूलूंगा."

"इसमें क्या है. . . .?" बाबू ने धीरज बंधाया.

अगले दिन दफ्तर से एक टाइपराइटर चोरी हो गया. सबने दीनू को खूब डांटा, "तुम गेट पर बने रहे और टाइपराइटर चोरी चला गया?"

इस मामले को लेकर एक समिति बैठी. फैसला किया गया, "कोई भी सामान बिना दीनू की मिलीभगत के बाहर नहीं जा सकता. अतः दीनू को ही इसका नुकसान भरना होगा. टाइपराइटर की कीमत ढाई हजार रुपये होती है. दीनू इतनी रकम एक साथ अदा नहीं कर सकता, अतः जब तक यह रकम अदा न हो जाये तब तक दीनू के वेतन से दस रु. प्रतिमाह कटते रहेंगे."

दीनू यह सजा सुनकर प्रसन्न हुआ. बाहर निकलकर उसने बाबू को धन्यवाद अदा किया. □

गयी तो उस दिन उसका सिर बुरी तरह दर्द करने लगता था. कैंटीन की काफी में मिट्टी की गंध आने लगती थी. सच में वे दिन आज भी अपनी गुमनाम पदचापों से भीतर के तार झन-झना जाते हैं. देखे जाने का सुख मन को उठाता है. भीतर से हमें ताजा बनाता है. ताजा रहने के लिए इंस्पायर करता है."

"एकदम ठीक कह रही हो मिसेज आशुतोष!" मिसेज सिंह साड़ी पहनते हुए कहने लगी थीं, "आंखों को ठहरा ले जाने की सफलता नारी को भीतर से ज्यादा जागृत रखती है और वह इसी सुख के लिए अपने को तैयार रखती है. यह तैयारी या लालसा देहसुख से कहीं ऊपर है. देहसुख तो एक सीमा में आकर रुक जाता है, ऊफनकर ठंडा हो जाता है, लेकिन आंखें ठहरा ले जाने की अहमन्यता नारी से अलग नहीं हो पाती. यह सुख कभी चुकता नहीं. यही अहमन्य उसे जिलाये रखता है, उठाये रखता है."

मिसेज रमण परदे की दरार से लॉन की धूप का अंदाजा ले रही थीं. मौसम से लगता वासन्तिका विदा ले चुकी है, लान पर धूप के छौने इधर-उधर नहीं दौड़ पा रहे हैं. एक ही जगह इकट्ठे हो गये हैं. सिल्कन पर्दा बार-बार सामने आता जा रहा है. करीब पांच-साढ़े पांच बजने जा रहे होंगे. हमारे बाजार में पहुंचते ही दूकानदार 'आइए बहिनजी' की मुद्रा में चुस्त खड़ा हो जायेगा. न जाने कितने किशोर, युवक अपनी-अपनी जुल्फों को, कालर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभालने लगेंगे. लिपस्टिक, शैंपू, सेंट अथवा नेल कटर के लिए नहीं कितनी दूकान छान मारेंगे और बेचारों की निगाहों को ललचा-ललचा देने में मिसेज सिंह तो, ओफ कहीं डिजाइन की, कहीं कलर की, कहीं क्वालिटी की बात करके सरक जायेंगे. और बेचारे लोग मछली निकल जाने का अफसोस लिये निगाहों की ... को झटका देने लगेंगे.

अच्छा है मिसेज सिंह जल्दी तैयार हो गयीं, वर्ना उनकी ... नाइटी से बाहर आने में घंटों ले लेती है. उनकी ब्रा में हुक ... की कठिनाई भांप ली और बोलीं, "मैं मदद करने आऊं क्या?"

"फिर तुम्हीं कहोगी 'शाकुंतलम' की प्रियंवदा की तरह कंचुक का क्या दोष!" और मिसेज सिंह ने जरा झुककर ब्रा को एडजस्ट कर हुक लगाते-लगाते कह दिया.

तीनों हंसने लगी थीं. रमण ने स्थिति को संवारते हुए फिर कहा, "... जो होगा वही तो दिखेगा. जो होगा ही नहीं, वह तो कल्पित कहलायेगा. तुम्हारी यह बात कि आंखों से मिलने वाला सुख नारी के अहमन्य को जिलाये रखता है, उसे सबके बीच महकने ... लिए, महत्त्वपूर्ण बनने के लिए तपन दिये रहता है, मैं मानती हूं. लेकिन जब नारी में कुछ होगा ही नहीं तो कौन खिंचेगा? ... खोल बिना कस्तूरी के कब तक महकेगी? रूप के खोल में ... की कस्तूरी अगर बनी हुई है तो सोने में सुहागा है. देखिए मिसेज राघव को, पूरी सिविल-लाइन में क्लियोपेट्रा बनी घूमती ... जिसको चाहती हैं, उसी को हैंग कर लेती हैं. अंडर सेक्रेटरी ... सेक्रेटरी, हर कोई जीभ लपलपाते उनके पीछे घूमा करते हैं. ... ही कहिए, कस्तूरी है तभी तो सुगंध उड़ रही है, सुगंध खींच ... है. वह न हो तो सक्सेस मिलती हैं इतनी? किसी भी विभाग ... कोई भी काम उनके संकेत मात्र से हो जाता है. तनेजा और ... की श्रेणी से तो वे आगे की ही मानी जायेंगी. उनके एप्रोच, ... सक्सेस अल्ट्रामाडर्न हैं.

मिसेज सिंह के चमचमाते चेहरे पर जरा देर को एक काली ... का एक टुकड़ा बैठकर चला गया. होंठ कसे भी, कनपटियां ... भी, लेकिन तत्काल ही भौंहों के साथ सब पूर्ववत हो गये. अपने को संभाल गयीं. सामान्य होती हुई बोलीं, "इस तरह क्लियोपेट्रा वाली बात बहुत बड़ी सफलता नहीं है, मिसेज ... देह को ही हर मंजिल का रास्ता बना देने का अगर ... औरत का इरादा हो गया हो तो यह सफलता जल्दी हासिल की ... सकती है. जितनी जल्दी यह सफलता मिलती है, उतनी ही जल्दी ... भी होती है. हड्डियां मांस को कब तक कसे रख सकती हैं? ... खसोट में पता नहीं कितने वी. डी. डिजीज भीतर उठ आते ... मेकअप हों या दवाइयां, उसे नहीं छिपा सकते. फिर कोई ... सामने पूंछ नहीं हिलाता. अलशेशियन हों या देशी नस्ल के, ... मुंह घुमाकर निकल जाते हैं. इससे बेहतर तो मन की बात है, ... लंबे समय तक बनी रहती है. मन का सुख देह को भी जलाता और लंबे समय तक पराजय की भावना से अलग रखता है. ... कहकर मिसेज सिंह बेड रूम में चली गयीं और थोड़ी ही देर ... चाभी हिलाते हुए बाहर आ गयीं. दोनों उठ खड़ी हुईं. मिसेज आशुतोष ने अपने जूड़े को ऐडजस्ट किया. चांदी की पिन के घुंघरू बजे और चुप हो गये. मिसेज रमण ने भी आईने में एक निगाह डाली और बालों पर हाथ फिरा दिया. तीनों पोर्टिको में आ गयीं. मिसेज सिंह ने कार स्टार्ट करते हुए दोनों को सामने ही बैठने का इशारा किया. कार बजरी पर रेंगती आगे बढ़ चली.

कार सड़क पर टर्न लेती हुई शहर की ओर बढ़ी जा रही थी. मिसेज सिंह बड़े उत्साह से कहे जा रही थीं, "दूसरों की आंखों में आ जाना, चर्चित हो जाना ही आज की नारी की बड़ी सफलता है. हम कहीं भी हों, पर दृष्टि विंदु बनकर हों. यही मन को रास आता है. फिर सबके लिए देह को गोल्फ ग्राउंड बना देना दुर्गति ही करवाना है. सभी घृणा करें, मुंह फिरायें—उससे क्या फायदा! देखकर सामने वाले की तबीयत मस्त हो जाये, छाती जुड़ा जाये, यही हमारी बड़ी सफलता है. कालगर्ल, कैबरे डांसर या क्लियोपेट्रा आदि तो मूल्यांकन का बड़ा ही निचला तरीका है.

▣

मिसेज आशुतोष और रमण उनकी बातें सुन रही थीं. उनकी निगाहें सामने सूनी-सूनी सड़क पर लगी हुई थीं, जिन रास्तों पर निकलने के लिए भीड़ से भिड़ना पड़ता था. रेस्त्रां, पान के ठेले, चायघर, फुटपाथ और लोहे की रेलिंग वाले अड्डे सभी खामोश दिखाई पड़ रहे थे. लैंप-पोस्ट, नियॉन रॉड तो समय के पहले ही जल जाया करते थे. विज्ञापनों की तेज रोशनी तो हमेशा सामना करते मिलती थी. . . .पर. . .पर.

लगता है आज शहर बंद क्या है, अंधा हो गया है. कहीं कुछ दिख ही नहीं रहा, सूझ ही नहीं रहा और जो दिख रहा है, ओफ.

जहां देखो वहां जानवर ही जानवर दिखाई पड़ रहे हैं. सड़क देख रहे हैं. प्रतीक्षा कर रहे हैं. बड़े-बड़े खौफनाक सांड़, जबरे बैल, कड़कीले हेलें (भैंसें) मुर्रा भैंसों के आगे नथुनों से किस कदर गुर्राती आवाजें निकाल रहे हैं! गाये झुंड बनाकर सरक रही हैं, पूंछ दबाये-दबाये आंखें हठीली होती जा रही हैं.

दरवाजे, शटर, शो केस, साइन बोर्ड अपने में घुटे-घुटे-से लग रहे हैं. कहीं कुछ दिख नहीं रहा, शोर-शराबा, हार्न, चीख सभी कहां चले गये हैं. इक्का-दुक्का चलने वाले लोग लगता है, रोशनी खोज रहे हैं. कहीं कुछ सूझ नहीं रहा है. कौन दिख रहा है? देखेगा भी कौन? लगता है अंधापन शहर के चारों तरफ फैल गया है. कोई बोलने-बतियाने वाला भी नहीं.

चौराहे पर मोड़ लेती कार जरा धीमे होकर फिर तेज हो गयी. मिसेज सिंह की सांसें भारी हो गयीं. माथे पर कितनी सारी लकीरें दौड़ लगाने लगीं. तीनों एक-दूसरे को देखने से बच रही थीं. मिसेज सिंह के हाथों लगा स्टियरिंग संभल नहीं रहा था. कमानीदार नथुने रह-रहकर कांपे जा रहे थे. पसीने की बूंदें भी झलक आयी थीं. वह हांफती-सी लग रही थीं और हार्न बजाये जा रही थीं, मानों जानवरों को हटाकर ही रहेंगी.

मोड़ पर बासबन के पास जाकर उन्होंने कार किनारे लगा दी. हैंडब्रेक लगा कर, सीट के नीचे से जिन और सोड़े की बोतलें और खाली गिलास वह देने लगीं. □

● सीताबर्डी, नागपुर, 440012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरली

• आलोक मेहता

"अरे मियां, उठिये भी, क्या अभी से सोने लगे! कैबिनेट के नामों का फैसला हो जाये तो फिर आराम से दो-चार बरस सो लेना." रहमान साहब ने उस छोटे से कमरे में चल रही गर्मागर्म बहस से अलग हटकर किनारे पर आंखें बंद करके पैर पसार चुके मुरलीधर आजाद को महफिल में लाने के इरादे से कहा.

चुनाव की एक महीने की मारामारी और एक हफ्ते से पार्टी में चल रही खींचातानी से परेशान मुरली ने चिढ़कर कहा, "जो चाहो फैसला करवा दो रहमान साहब, देखता हूं, कैबिनेट से मेरा नाम कैसे कटता है! खाली लौंडों के बल पर राजनीति नहीं करता मैं और न ही भीख मांगता हूं. पच्चीस नाम अब भी जेब में हैं. कल राज्यपाल को अलग होने की लिस्ट दे दूं, तो ये आपका रत्नप्रकाश दुम हिलाता मेरे पीछे घूमता दिखेगा."

रहमान साहब ने मुरलीधर आजाद को शांत करने के इरादे से कहा, "भाई जान, हो सकता है रत्नप्रकाश सच ही कह रहे हों. हाई कमान ने ऑब्जेक्शन लगा दिया हो?"

इस अटकल ने मुरली को और अधिक उत्तेजित कर दिया, "हूं! कौन से आला कमान की बात करते हैं आप? वहां, जहां ये सब लार टपकाते हुए जाते हैं और 'हां-जी, हां-जी' का नाटक करके दूसरों के खिलाफ जहर भर आते हैं. सब समझता हूं इनकी चालें. अब मैं इन्हें चरित्रहीन दिखने लगा हूं और जब हरिजन बस्ती में कोई घुसने नहीं देता था, तो मैं इनके लिए चरित्रवान और पार्टी का सबसे बड़ा रहनुमा था? कैरेक्टर, हूं! मैं तो सब कुछ खुलेआम कहता और करता हूं. लेकिन ये हमारे नेताजी सुबह-शाम पूजा का ढोंग करके दो बोतल ह्विस्की उड़ाते हैं और हर तीसरे दिन किसी असहाय औरत की मजबूरी का फायदा... मैं तो पैसा देता हूं या दोस्ती रखता हूं और ये सब देते हैं—सुनहरे ख्वाब और टेंपरेरी नौकरी, ताकि जब तक नौकरी रहे, औरत इनके चंगुल से बाहर न जा पाये. पूछे हाई कमांड मुझसे... या करें ये सबके सामने बात, इनकी तो ऐसी...!"

"बस...बस मियां, आप तो खफा हो गये. सो जाओ. मुझ पर क्यों गर्म होते हो." रहमान साहब ने यहीं बात बंद करना ठीक समझा, वरना मुरली के साथ मिलकर नेता के खिलाफ षडयंत्र करने के लिए कोई उनका ही नाम उछाल देगा और कैबिनेट में पका-पकाया नाम नीचे टपक जायेगा.

वह भी थोड़ा खिसककर चुपचाप आंखें मूंदकर बैठ गये. सामने वाले कोने में आठ-दस विधायकों के बीच चल रही राजनीतिक बहस जारी थी—"डेमोक्रेसी, खाक है डेमोक्रेसी पार्टी में! जो नेता चाहे, वही होगा, तो फिर इतने नुमाइंदे चुने क्यों जाते हैं? खाली हाथ खड़ा करने या अंगूठा लगाने के लिए?"

"नेता भी तो आपने-हमने मिलकर चुना है. किसने जबरदस्ती की थी. यदि उसकी ताकत का लोहा माना है, तो उसकी बात भी मानो."

"लेकिन उसे भी हमसे सलाह-मशविरा करना चाहिए... उसे सिंहासन पर बिठाकर राजा तो नहीं बनाया...."

बस इसी बहस के कान में पड़ते-पड़ते रहमान साहब को सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते मुरली की जिंदगी आंखों में घूम गयी. पढ़ते थे, तब से जानते थे वह उसे. यूनिवर्सिटी की यूनियन के इलेक्शन में भी यह मिडिल का जवान अपनी टांग अड़ाता रहता था. अपने इलाके के दस-बीस लड़के इसके यार थे और जिस गुट को हराना होता, ये लोग धौंस-पट्टी, उठा-पटक और खून-खच्चर से पासा पलटकर ही छोड़ते थे. कई बार वाइस चांसलर की मेज पर छुरा गाड़ा था—जनाब ने और बात मनवाकर दम लिया था. एक बार लाठी-चार्ज हुआ, तो एक पुलिस सुपरिटेंडेंट की छाती पर चढ़ बैठा और तब तक चिल्लाता रहा, जब तक एक सिपाही ने अचानक इसके सिर पर पूरी ताकत से लाठी नहीं मारी.

इसके बाद पता लगा था, बेचारे के बाप की मौत हो गयी. जवानी का जोश दो जून की रोटी के लिए ठंडा होने लगा. बेवा मां और चार बहनें. बाप की कमाई होने तक कोई फिक्र नहीं की. अब लोगों के दरवाजे ताकने पड़ रहे थे. मजबूरी इंसान को गिराती भी है और चढ़ाती भी है. कहते हैं, उन दिनों मुरली भीगी बिल्ली बन गया था. गर्म खून को वक्त का इंतजार करना था. उसने परिस्थितियों के सामने सिर झुका दिया.

उन्हीं दिनों पं. रत्नप्रकाश, जो अब मुख्यमंत्री हैं और तब म्युनिसिपल कमेटी के चेयरमैन की निगाह हरिजन बस्ती के इस नौजवान पर पड़ गयी. पंडिताई के कारण हरिजन बस्ती में उनकी अधिक ठहरने की इच्छा होती थी और न ही वे लोग उनको भाव में उन्हें घास डालते थे. फिर उनका प्रतिद्वंद्वी रामदास हरिजन इसका फायदा उठाता था. मुरलीधर आजाद, जो तब सिर्फ 'मुरली' था—उनके लिए दो शिकार कर सकता था. वक्त-बेवक्त की हाथापाई और चुनाव के समय हरिजन वोट.

एक शाम करीब आठ बजे उन्होंने मुरली को अपने बंगले पर बुलवाया. उस जैसे बकरे को हलाल करने से पहले उसे अच्छी तरह दुलारा. पिता की मौत पर भरे गले से सहानुभूति प्रदर्शित की और डेढ़ सौ रुपये महीने पर सेक्रेटरी बनने का प्रस्ताव रखा. मुरली इस प्रस्ताव पर चौंका, 'यह बाभन मुझे इतनी लिफ्ट क्यों मार रहा है? सुना तो था कि यह उसकी बिरादरी के लोगों से बेहद नफरत करता है.' दिल की आवाज को दिमाग की व्यावहारिकता ने दबाया, 'लोगों की बातों से क्या करना है, ऐसा सुनहरा मौका कब मिलेगा? फिर अपनी बस्ती-बिरादरी के सामने नाक ऊंची हो जायेगी और रोब भी बढ़ जायेगा.'

मुरली ने झुककर रत्नप्रकाश 'जी' के पैर छुए और वायदा किया, "इस मुसीबत में पनाह देने के लिए मैं जिंदगी भर आपका एहसानमंद रहूंगा." पंडित रत्नप्रकाश ने पीठ थपथपाकर उसे अपने पास बैठाया और पहला सबक दिया—"मुरली, मेरे साथ काम करने के लिए एक बात याद रखना. अंदर की बात अंदर, बाहर की बाहर. दोनों में तुलना करके कभी अपना दिमाग खराब मत करना. अच्छा छोड़ो, तो अब थोड़ी पूजा कर ली जाये."

"जी हां...जी हां, मुझे इजाजत दीजिए." मुरली ने झुकते हुए विदा लेनी चाही.

"क्यों...अब तुम मेरे सक्रेटरी हो...दिन-रात, अच्छे-बुरे के साथी." यह कहते हुए वह मुड़े और अल्मारी में पुस्तकों की शेल्फ के पीछे से एक रंगीन बोतल निकालने लगे. फिर बोले, "देवि का प्रशाद लेने में तुम्हें परहेज तो नहीं?"

बेचारा नया-नया सेक्रेटरी कैसे मना करता! बोतल खुली और फिर खुलती ही रही. पांच-छह पैग के बाद रत्नप्रकाश भावुक होते चले गये—"क्या बिगाड़ा है मैंने इन लोगों का. हरिजन-बस्ती में सड़क, स्कूल, अस्पताल—क्या-क्या नहीं करवाया! लेकिन वह रामदास आग उगलता रहता है. भई, तुम्हारे लिए कुछ करूंगा, तो अपनी जात-बिरादरी के लोगों को ताक पर बैठाकर नहीं रख दूंगा. बताओ मुरली, क्या बुरा करता हूं मैं? क्यों तुम्हारी बस्ती के लोग मेरी जान के पीछे पड़े रहते हैं?"

मुरली पर एहसान और प्रशाद का पूरा असर था. उत्तेजित होकर बोला, "पंडितजी, बेफिक्र रहिए. रामदास क्या बेचता है आपके सामने! 'दिल्ली वालों' ने उसे चढ़ा दिया था, वरना कहीं झाड़ू लगाता ही दिखता. उसे तो मैं रास्ते पर लगा दूंगा. अब उस बस्ती में आप राजा की तरह जायेंगे और वह कमाल दिखाऊंगा कि लोग सिर पर उठा लेंगे."

रत्नप्रकाश ने खुशी के मारे पूरी बोतल गिलास में उड़ेलते हुए पूछा, "सच मुरली! प्यारे सच, तो देखो मैं भी तुम्हें सिर पर बैठा लूंगा, इसी बात पर चियर्स."

गिलास से गिलास टकराये और फिर हर शाम टकराते ही रहे. इस नयी दोस्ती ने दोनों को चमकाने का मौका दिया. मुरली के चेअरमैन के सेक्रेटरी बन जाने के बाद लोग अपना काम निकलवाने के लिए रामदास के बजाय मुरली के दरवाजे पर पहुंचने लगे. नौकरी, तबादले, मकान के नक्शे, जमीन, टैक्स वगैरह-वगैरह.

उधर रत्नप्रकाश की सभाएं जमने लगीं. मुरली अपनी बस्ती के लोगों को 5-5 रुपये दिलवाकर बसों से बुलवा लेता. जय-जयकार के लिए एक इशारा काफी होता. दिल्ली से आने वाले नेता प्रसन्न होने लगे. पं. रत्नप्रकाश के लिए संसद का टिकट लगभग पक्का हो गया. चुनाव से पहले 'चेअरमैन' साहब का खजाना भरने के लिए 'सेक्रेटरी' ने घड़ाधड़ लोगों के कागजों पर दस्तखत करवाये—हिसाब-किताब बराबर किया जाता रहा. स्वाभाविक था, मुरली को उसका 'प्रशाद' भी मिल रहा था... लेकिन अब चेयरमैन की आंख के सामने नहीं?

▣

और चुनाव के दिनों में मुरली ने जी-जान लगाकर रत्नप्रकाश की हवा बनायी. विरोधियों की सभा में हुल्लड़, पत्थर, मारा-पीटी और 'पंडितजी' की सभा में—'जिंदाबाद', 'जीत के रहेगा रत्नप्रकाश' के नारे. मतदान से दो दिन पहले हरिजन बस्ती में रातोंरात शराब की बोतलों और कपड़ों के ढेर पहुंच गये. जितने वोट, उतने नोट. विरोधी घनश्याम सिंह के कार्यकर्ताओं से भिड़ाकर एक आदमी 'शहीद' कराकर आतंक फैला दिया.—"घनश्याम सिंह ठाकुरवादी है...ब्राह्मणों, हरिजनों और मुसलमानों से नफरत करता है. उसे वोट दिया, तो समझो, तुम्हारी बस्ती भी जलेगी तो कोई नहीं पूछेगा." यों यह बात बाद में पता चली कि रत्नप्रकाश का जो कार्यकर्ता मरा था, उसे भीड़ में अपने ही गुट के आदमी ने चाकू मारा था, लेकिन चुनाव के बाद पंडितजी ने ले-देकर मामला दबवा दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वोटिंग के दिन मुरली ने अपने पट्ठों को छोड़ दिया—'निगाह रखो, जिस घर का वोट हमारी तरफ न आ रहा हो, बाहर मत निकलने दो. निकले तो सीधे अपने बूथ पर पहुंचाओ. इस तरह चुनावी तिकड़मबाजी और बस्ती के लोगों पर किये गये एहसानों ने मुरली के रहनुमा रत्नप्रकाश को 'दिल्ली-दरबार' का एक रत्न बनवा दिया.

दिल्ली पहुंचकर रत्नप्रकाश ने प्रदेश के लिए रिजर्व कोटे से राज्यमंत्री का पद पाने में सफलता प्राप्त कर ली. उधर अपने निर्वाचन क्षेत्र में पलड़ा भारी रखने के लिए उन्होंने अधिकारियों और पार्टी वालों को आवश्यकतानुसार मीठी-कड़वी बातें कह-कहकर मुरली को पूरी तरह अपना राजनीतिक सेनापति बना लिया. बस फिर क्या था, मुरली के हर इशारे पर काम होने लगे. तबादला, नियुक्ति, जमीन का झगड़ा, इंडस्ट्री का लाइसेंस, बसों के परमिट. और हां, हरिजन बस्ती में अलग से कॉलेज खुल गया. चेअरमैन—रत्नप्रकाश और कर्ता-धर्ता सचिव—मुरली. सरकारी ग्रांट में तो कमी हो ही नहीं सकती थी. इसी तरह जमीन के पट्टे और मकानों के लिए ऋण की योजना आयी, तो मुरली की आंख के सामने से निकली हुई हर दर्खास्त पर पंद्रह दिन में सारी कार्यवाही पूरी होती गयी. इस समाज-कल्याण में अपनी गांठ खोले बगैर ही मुरली को भी मेन रोड के किनारे वाली दस बीघा जमीन मिल गयी और बस्ती के बीचोंबीच सबसे ऊंचा 'मुरली सदन' भी खड़ा हो गया.

देखते ही देखते यह नौबत आ गयी कि मुरली के सहारे के बिना 'सेंट्रल मिनिस्टर' पंडित रत्नप्रकाश अपने क्षेत्र में दस कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते थे. वैसे भी केंद्र और प्रदेश की राजनीतिक खींचा-तानी में उलझे रहने के कारण वह आपने इलाके के लिए विशेष ध्यान नहीं दे सकते थे?

अगला चुनाव करीब आने पर एक शाम 'देवि पूजा' के वक्त 'प्रसाद' लेते-लेते मुरली ने अपने नेता से मुस्कराते हुए कहा, "पंडितजी, आखिर ये कब तक चलता रहेगा? आप शहर में राजा थे राजा. दिल्ली में रहकर हाई कमांड के पैर दबाते-दबाते और अधिकारियों के इशारों पर फाइलों में दस्तखत करते रहने से तो आपको जंग लग जायेगी."

पंडितजी जरा चौंके, "मुरली, मैं समझा नहीं, तुम कहना क्या चाहते हो?"

मुरली ने तवा गर्म देखकर छींटा मारा, "लीजिए, अब ये भी हमें समझाना पड़ेगा. आप तो हमारे गुरु हो महाराज. बहरहाल, हम कहना यही चाहते हैं कि छोड़ो दिल्ली-दरबार की सेवा और इस रियासत पर हुकूमत करने का इंतजाम करो. स्टेट का चीफ मिनिस्टर किसी प्राइम-मिनिस्टर से कम नहीं होता पंडितजी. यही नहीं, फिर दिल्ली की राजनीति में भी आपकी बात अधिक सुनी जायेगी.

पंडितजी दो मिनट के लिए बिल्कुल चुप हो गये. 'हूं' करके उन्होंने एक ही सांस में गिलास खाली कर दिया और बोले, "वाह मुरली! तुम तो उस्तादों के भी उस्ताद हो गये. ठीक है, इस बार मैं दिल्ली में साफ कह देने वाला हूं कि मुझे नहीं चाहिए संसद का टिकट...मुझे अपने क्षेत्र में रहकर काम करना है... लोगों के दुःख-दर्द दूर करने हैं. यदि मुझे पार्टी में रखना है, तो एसेंबली का टिकट दे दीजिए."

"अर-र-र पंडितजी, आप तो सारा मामला ही चौपट किये दे रहे हैं. चुनाव से पहले ही पत्ते खोल देंगे, तो बन चुके चीफ मिनिस्टर. तब तो शायद आपको राजनीति छोड़कर हरिजन बस्ती के मंदिर में भगवे कपड़े पहनकर कीर्तन ही करना पड़ेगा. मेरा मतलब तो यह है कि आप दिल्ली में ऐसा हिसाब-किताब बैठाइए कि न केवल आपको पार्लियामेंट का टिकट मिले, बल्कि एसेंबली के टिकटों के बंटवारे में आपकी राय पर विशेष ध्यान दिया जाये. बस, फिर दोनों चुनावों के बाद जब यहां चीफ मिनिस्टर का चक्कर फंसे, तो आप ऊपर से टपक जाइए." यह कहकर मुरली ने पंडित के गिलास को फिर से आधा भर दिया.

गिलास रखने की आवाज ने 'चीफ मिनिस्टरी' के ख्याल में डूबे हुए पंडितजी का ध्यान खींचा. बोले, "बात तो तुम ठीक कहते हो मुरली, लेकिन इधर यह रामदास और उधर ठाकुर युधिष्ठिर सिंह कबसे मुख्यमंत्री की कुर्सी पर चौकड़ जमाये बैठे हैं, इनका क्या होगा?"

"इनका वही होगा पंडितजी, जो आप चाहेंगे." शेर की तरह जोर से डकार लेते हुए मुरली ने कहा, "यदि दिल्ली

भगवान के नाम पर

■ मार्टिन जौन 'अजनबी'

शहर के एकमात्र भव्य मंदिर के बाहर और भीतर दर्शनार्थियों की अपार भीड़ लगी हुई थी. शायद आज कोई धार्मिक उत्सव था. मंदिर से कुछ हटकर पूजन सामग्रियों के अलावा फल वगैरह की दुकानें पंक्तिबद्ध लगी हुई थीं.

सहसा चिथड़ों में लिपटी बूढ़ी काया वाली एक भिखारिन फलों की दूकान के समीप आ धमकी, "भला हो बेटा तेरा, भगवान के नाम पर एक केला दे दे!" फलवाला झुंझलाया और फौरन सफेद झूठ बोल दिया, "अभी जाओ, फालतू केला-वेला नहीं है." फिर जाने क्या सोचकर उसने केलों के ढेर से एक सड़ा केला उठाकर उस भिखारिन के हाथ में थमा दिया. केला लेकर भिखारिन ने क्षणांश उसे उलट-पुलट किया और अपने पिचके कटोरे से दस पैसे का एक सिक्का निकालकर फलवाले की ओर बढ़ाते हुए कहा, "ले, पैसे ले, एक केला और दे."

पैसे लेकर फलवाले ने एक बढ़िया-सा केला उसे थमा दिया. अचानक वह भिखारिन मंदिर की ओर मुड़ी और अपने लाठी तथा कटोरे को नीचे रखकर दोनों हथेलियों में केले को पकड़ कर कहने लगी, "देख ले भगवान, तेरे नाम पर मिला हुआ सड़ा केला और पैसे से खरीदा हुआ बढ़िया केला. अब बता, तू बड़ा है या पैसा!" और वह ठठाकर हंसने लगी. फलवाला अपने को व्यस्त प्रदर्शित करने के लिए केलों के ढेर पर अकारण हाथ फेरने लगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गपशप

मशवरा

■ ऑस्कर वाइल्ड

एक नवयुवक लेखक, जो बहुत बुद्धिमान और परिश्रमी था, मेरे पास आया और कहने लगा, "मैं एक मुद्दत से लिख रहा हूं और अब तक बहुत कुछ लिख चुका हूं, पर ऐसा लगता है कि देश के सभी समीक्षकों ने जैसे मेरे खिलाफ साजिश कर ली है, क्योंकि किसी भी समीक्षक ने मेरी रचनाओं पर आलोचना नहीं की. कृपया आप अपनी अमूल्य राय प्रदान करें."

मैंने उससे कहा "महाशय! मेरा मशवरा है कि आप भी इस साजिश में शामिल हो जायें!" □

आपकी गोटी फिट है, तो वहीं से इनका पत्ता साफ करवा दीजिए. रामदास का नाम कटवाकर मुझे एसेंबली का टिकट दिलवा दीजिए और युधिष्ठिर सिंह के गुट में फूट डलवा दीजिए. वो लक्ष्मण सिंह, कृपाल सिंह, छत्रपाल—सब तो खार खाये बैठे हैं—फिर उनकी वही फाइल भी जरा दिल्ली मंगवा लीजिए. अरे वही... मेडिकल कॉलेजों में भर्त्ती के लिये हुए 'रिश्वत कांड की.' सीधे पचास लाख का मामला था. सी.बी.आई. से जांच की बात ही चल निकली, तो चीफ मिनिस्टरी तो दूर रही, वह अपनी मेंबरी भी भीख की तरह मांगते घूमेगा और तब आप उनकी लिस्ट कूड़ेदान में फेंककर अपनी लिस्ट पास करवा लीजिएगा. वो बाद में कूद-फांद नहीं करे, इसलिए उस अकेले को उदारता-पूर्वक टिकट दिलवा दीजिएगा. इसके बाद तो एसेंबली में आपका यह चेला दो सौ पच्चीस एम.एल.ए. की लाइन लगवाकर आपको सलामी न दिलवा दे, तो काला मुंह करके इसे दस जूते मारियेगा."

"ओ हो, क्या कह रहे हो मुरली!" पंडितजी ने शराब और सुंदर भविष्य की स्वप्निल गंगा में गोते लगाते हुए भावुकता के साथ कहा, "तुम मेरे सेक्रेटरी नहीं, मेरे देवता हो. तुम तो भगवान कृष्ण के साक्षात अवतार हो. मैं तो तुम्हारे बल पर जिंदा हूं और मुझे जिंदा रहना है. ... बस यह ठीक है ... तुमने यह शतरंज जमा दी है. अब देखो 6 महीने बाद इस प्रदेश पर हमारा ही डंका बजा करेगा. बोलो कैबिनेट में कौन-सा डिपार्टमेंट संभालोगे—होम, फाइनेंस या सोशल वेलफेयर!"

पंडितजी नशे में भावुक हो रहे थे और अपना दांव सही पड़ता देख मुरली का नशा उतर रहा था. उसने व्यावहारिक बनते हुए कहा, "पंडितजी, क्यों मजाक बनाते हो. आपके चरणों में जगह बनी रहे और अपने 'भाई-बंधुओं' की सेवा करने का अवसर ... मेरे लिए तो इतना ही काफी है."

और सचमुच मुरली की बिछाई शतरंज की गोटें कमाल दिखाती रहीं—पंडितजी पार्लियामेंट का चुनाव जीते, एसेंबली के टिकटों में उनकी राय को विशेष महत्त्व मिलने से रामदास, युधिष्ठिर सिंह और दस वर्षों से राज्य के मुख्यमंत्री बने हुए सोमनाथ शर्मा के पलड़े उलट गये. जिधर देखो, उधर पंडित रत्नप्रकाश का जादू छा गया. सो, एसेंबली के चुनाव में मुरली भी आसानी से एम.एल.ए. बन गया और अपने पुराने 10-15 परिचित पट्ठों को भी अलग-अलग क्षेत्रों से जितवा लाया. चुनाव में तो हवा चलनी चाहिए और जो हवा का फायदा उठा ले, वही असली राजनीतिज्ञ.

लेकिन मुरली यह सपने में भी नहीं सोच सकता था कि मुख्य-मंत्री पद का कोहिनूरी 'ताज' पहनने के बाद पंडित रत्नप्रकाश उस सीढ़ी को गिराने में तनिक भी नहीं हिचकिचायेंगे, जिसके बल पर वह इस 'सिंहासन' को पाने में सफल हो सके थे. तभी तो तो मुख्यमंत्री पद की शपथ लेते ही पंडितजी ने अपने मंत्रिमंडल की लिस्ट बनाने के लिए मुरली से चर्चा करना कतई आवश्यक नहीं समझा. उन्हें यह महसूस होने लगा कि दिल्ली में रहने की बात और थी, प्रदेश में राज करने के लिए अपनी लगाम किसी और के हाथ में नहीं देनी चाहिए. फिर जो मुरली उनके केंद्रीय मंत्री बनने पर शहर का सर्वेसर्वा हो गया था, वह स्वयं होम मिनिस्टर बनाने के बाद अवसर मिलने पर पंडितजी को ही हवालात में रखवाने का इंतजाम कर सकता है. उनकी 'काले-धोले' की जीती-जागती फाइल तो वह खुद ही है.

सो, उन्होंने रातों-रात मुरली के पुराने दिनों के बलात्कार कांड की एक फाइल बनवाकर रामदास गुट के एक पट्ठे घन-श्याम दास के हाथों दिल्ली दरबार तक पहुंचा दी. नतीजा यह है कि अब सबको एक-दूसरे से भिड़वाकर पं. रत्नप्रकाश कैबिनेट बनाने के लिए स्वतंत्र हैं और हाई कमांड के बहाने सबसे घुटने टिकवा रहे हैं.

■

रहमान साहब, इन्हीं विचारों में डूबे थे कि बाहर जोर से हार्न बजने के साथ गाड़ी रुकने की आवाज आयी—एक हलचल-सी मच गयी. रहमान साहब कपड़े ठीक करके खड़े हो गये. बाहर से पंडित रत्नप्रकाश सबका अभिवादन स्वीकार करते हुए अंदर आये. चेहरे पर विजय की मुस्कान और गंभीरता के मिश्रित भाव.

उन्होंने देरी के लिए सबसे नाटकीय माफी मांगी और बताया, "मुझे हाई कमांड के अनुशासन की सीमाओं के सामने झुकना पड़ा है. लेकिन मेरा विश्वास है कि मेरे साथियों की शक्ति, मित्रता और सहयोग में कोई अंतर नहीं आयेगा." फिर उन्होंने सबसे अलग-अलग बातचीत करने की इच्छा व्यक्त की और सबसे पहले मुरली को ही अपने पास बुलाया. उसके गले में हाथ डालकर वह अंदर वाले कमरे में घुस गये.

पंद्रह मिनट बाद कमरे का दरवाजा खुला और अकेले मुरली बाहर आता दिखाई दिया—रहमान साहब ने आवाज लगायी, "मुबारक हो भाई! हमें भी खुशखबरी सुना दो! होम ले रहे हो या फाइनेंस." लेकिन मुरली तो जैसे कुछ सुन ही नहीं रहा था. वह नीची निगाह किये तेजी से कदम बढ़ाकर चला गया. सामने बैठे हुए चंदनसिंह ने स्थिति भांपते हुए कहा, "रहने दीजिए रहमान साहब, मुरली की तो 'मुरली' बज गयी! आप अपना राग संभालिए, नहीं वह भी हाथ से न निकल जाये." □

● ट्युनिशर स्ट्रासे-3/1606, 5 कोलोन-51 (पश्चिम जर्मनी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज उस घटना को हुए तीसरा दिन था. उससे मिलने कई लोग आ चुके थे. सभी ने एक ही प्रश्न किया था, "ओम! यह कैसे हो गया, किस तरह?. . .तुम दोनों में कोई दुश्मनी तो थी नहीं. . .फिर?" लेकिन इसका उत्तर उसके पास नहीं था, जो हो गया वह क्या था?

उसकी याद पीछे लौटने लगी. वह अपने गांव से दूर शहर के कॉलेज में पढ़ने जाया करता था. रास्ते में तरह-तरह की कल्पनाएं किया करता था. पंक्तियां जोड़-जोड़कर कविताएं लिखता था. उसकी एक कविता शहर की किसी पत्रिका में छपी भी थी. तब पहली बार उसे कितनी खुशी हुई थी. मित्र उसे कविजी कहते थे. और वह रजनी!! आज रजनी का, उसके मित्रों का वह कवि यहां सींखचों में बंद है.

घायल घोड़ा

· हरि मोहन

उसे याद आया कि वह नौकरी तलाशता रहा था, पर उसे कोई नौकरी नहीं मिली थी. एम. ए. किया था, फिर बी. एड. भी. वैसे रुचि उसकी साहित्य में थी और उसे चित्रकारी का भी शौक था. पर कहीं कोई किनारा नहीं––तीन-चार वर्ष ऐसे ही इधर-उधर इंटरव्यू देता रहा. पिताजी क्लर्क थे. बहुत मुश्किल से घर चल रहा था. जैसे-तैसे करके उसे इतना पढ़ाया, पर सब व्यर्थ. पिताजी फिर भी आशावान थे. कहा करते थे–'ईश्वर कभी वह दिन भी लायेगा, जब तुम्हें उपयुक्त नौकरी मिलेगी, पर उनकी यह आशा, आशा ही थी, किसी बांझ स्त्री की आशा की तरह. अंदर से वे खोखले हो चले थे और वह स्वयं भी बहुत निराश हो गया था–– अब किसी इंटरव्यू में जाने के लिए पिताजी से पैसे मांगने में उसे शर्म महसूस होती थी.

इसी दौर में एक दिन उसने अपना घर छोड़ दिया. दस-पंद्रह दिन ऐसे ही भटकता रहा. कई शहरों में दफ्तर-दफ्तर. . .पर बेकार. उसे पत्रिकाओं से लगाव था. सोचा था, किसी पत्रिका के दफ्तर में जाकर शायद कोई काम मिल जाये . . .प्रूफ रीडरी या ऐसा ही कोई काम. . .लेकिन किसी ने कहीं नहीं पूछा. वह एक दिन पार्क में अकेला बैठा था. एक वृद्ध सज्जन घूमने आये थे––बातों ही बातों में पता चला कि वे स्टेट बैंक में मैनेजर हैं. उसने पांव पकड़े. उन्हें दया आ गयी और उसे बैंक में गेट-कीपर की जगह दे दी. कहा, "कुछ दिनों बाद क्लर्क के लिए फॉर्म भर देना, फिलहाल जगह नहीं है." वह तैयार हो गया था. चलो कुछ दिनों में यही सही!

गेट पर खाली बैठा क्या करे? वह कई दिन सोचता रहा. कुर्सी से उठकर बाहर, बाहर से फिर कुर्सी पर या बैंक के लंच टाइम में चाय-पानी, बस यही काम था उसका. खाकी वर्दी मिली थी. पहले-पहल शर्म तो आयी पहनने में, पर सोचा यहां उसे कौन जानता है. एक बंदूक थी उसके पास. कहां कलम और ब्रश, कहां बंदूक! वह एक दिन सोचता-सोचता हंस रहा था. पर थी उसके हाथ में बंदूक ही. जेब में कलम टटोली, बैंक के खाली छ

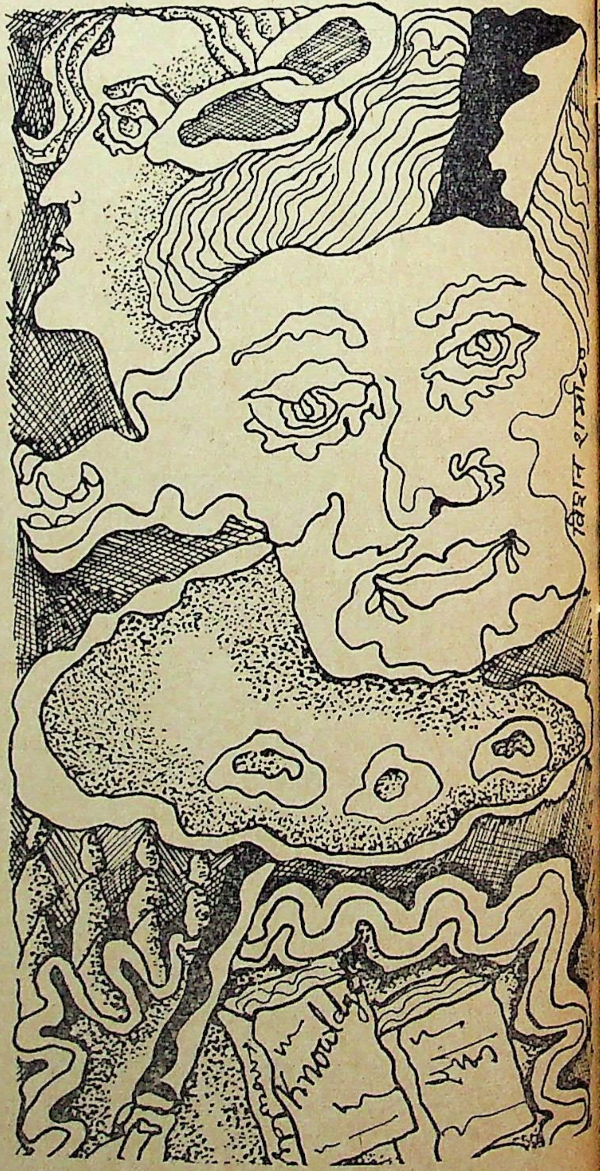

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्म लेकर ऐसे ही कुछ लिखता-बनाता रहा, फिर उन्हें फाड़कर ड़ेदान में फेंक दिया. प्रायः वह दिनभर बैठा-बैठा यही करता.

लेकिन आखिर कब तक यह जिंदगी चलेगी? ये भी कोई जिंदगी है? रोजाना बैंक आना, दिन भर खाली बैठना, शाम को कैश को सुरक्षित स्थान तक पहुंचाने साथ जाना, बस. कई बार जमने की सोची, कई बार मन उखड़ा. अन्ततः वह वहीं था. उसी कुर्सी पर. वह पैसे का तमाशा देखता. पैसे निकालने, जमा करने वाले आते. लेकिन ज्यादातर भीड़ महीने के पहले दो-तीन ही दिन रहती. वह देखता... सोचता... सोचता-देखता. पर वहां खा था? कुछ नहीं था. सब बेमतलब. पैसा देखने की चीज नहीं, इस्तेमाल की है. लोग आते हैं, ढेर से नोट लेकर चले जाते हैं, कभी जमा कराने ढेर से नोट ले आते हैं—वह सोचने लगा, मेरे पास भी इतने पैसे होते तो खूब खर्च करता.

...ले इस जगह पर अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ था —पहले चार-छह दिन तो किसी तरह कट गये. फिर निरंतर ...ियत का एहसास. आज रामचंद्र उसके पास सुस्ताने बैठ गया ... रामचंद्र उसी बैंक में चपरासी था. बड़ी-बड़ी मूंछें, छोटी-छोटी ...खें, चेहरा कभी साफ नहीं. ठोड़ी पर कड़े खुरदरे बाल. शुरू ...ही जबसे उसने देखा है, वह ऐसी ही हैं. पर है बड़ा रंगीन ...यत का आदमी. बोला—

"कउन देस से आये हो बाबू?"

"अपनी कोई जगह नहीं भाई!" वह बोला.

"अरे! कहां फंसि गये! कहीं बड़े बाबू बनते."

"कहां रामचंद्र! अपन कहां बड़े बाबू बन सकत हैं?" वह ... लहजे में बोला.

"कइसे नहीं बन सकते? पढ़े-लिखे तो हौ न?"

"छोड़ो रामचंद्र!" उसने उसे टालना चाहा, किंतु रामचंद्र ...हां टलने वाला था, बोला, "अच्छा, बाबू तबियत तो नाहीं ...पत होइहै?"

"हां, देखो कोशिश कर रहा हूं."

"अरे! कोसिस! ससुरी तबियत भी कइसी चीज है?... ... परसाद लेव, तब देखौ चमत्कार.... सुरू-सुरू मां हमहूं बड़ा ...ान रहा"... और उसने पैंट की जेब में से एक चूनेदानी जैसी ...बी निकाली... और एक काला-सा टुकड़ा लेकर उसके हाथ ...रख दिया. बोला, ले लेव बाबू, पानी का गिलास पी लेव, फिर ...!"

वह सोचने लगा, क्या करे क्या न करे? रामचंद्र ने भी एक ...ा ले लिया था... तभी तनेजा बाबू ने आवाज फेंकी, "राम-..." और रामचंद्र लापरवाही से 'आया जी' कहकर अपने काम ...ला गया. उसने वह परसाद वाला टुकड़ा ले लिया जो उसे ...लगा.

...उस दिन रामचंद्र नहीं आया था. शायद छुट्टी पर था. उसने प्रतीक्षा की. उसे वह प्रसाद आज फिर चाहिए था. वह सोचने ... यह अफीम भी क्या चीज है. कहां मिलेगी, कल जरूर पूछेगा और खरीद लेगा. दिन तो आराम से कट जाया करेगा. उसने जेब में कलम टटोली. आज कलम भी नहीं थी. वह बैठा-बैठा उंगली से ही अपने हाथ पर कुछ बनाता रहा. फिर मन उचटा. बाहर की ओर गया. कूलर से पानी पीकर फिर वापस आ गया. भीड़ आज अधिक नहीं थी. अपनी जगह पर बैठा वह बोर हो रहा था. उसने बंदूक पर हाथ फेरा ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर. कई बार. हत्थे पर धूल थी, साफ की. नाल पर मक्खी की बीट थी, खुरच दी. फिर देखने लगा कारतूसों की बेल्ट. कारतूस! ... ये कितनों की ही जान ले सकते हैं. मन में सोचता, कहीं ये नकली तो नहीं हैं. उसने एक कारतूस निकाला. उलट-पलटकर देखने लगा ...भारी था. उसने इतने गौर से कभी कारतूस नहीं देखा था. ...असली ही होगा. बंदूक खोली. लोड कर ली. उसे पता नहीं था, वह क्या कर रहा है. वह तो जैसे अपने घर में था. जैसे इंटरव्यू से लौटा हो. जीना चढ़कर थका हुआ या हांफते हुए घोड़े की तरह. . .जैसे किसी घोड़े पर बोझा बहुत हो और वह हांफता हुआ दौड़ रहा हो. . . .अचानक हिन-हिनाकर उसने दुलत्ती झाड़ी . . .सालो मुझे नौकरी क्यों नहीं देते मेरी!

वह घोड़े की तरह हांफने लगा. उसकी उंगली का दबाव बंदूक के घोड़े पर बढ़ता गया. . .और धमाके के साथ उसका ध्यान टूटा—गोली छूट गयी थी. लोग इकट्ठे हो गये. सामने बैठने वाला क्लर्क रमेश लोगों के बीच था. . .गोली उसी को लगी थी.

वह धक् से रह गया. उसने आंखें फाड़कर देखा, लेकिन जो सामने था, सच था, सच के सिवा कुछ नहीं. उसके माथे पर पसीना झलक आया.

पुलिस आयी. मैनेजर ने बार-बार पूछा . . . "ओम तुमने ऐसा क्यों किया? मुझे तुम भले लड़के लगे थे". . .पर उसके पास कोई उत्तर नहीं था.

उस दिन की घटना को तीन दिन हो गये. वह यहीं कैद है. पता नहीं बेचारे रमेश बाबू के घर क्या हाल हुआ होगा! इस आशंका से उसकी चेतना में कहीं सांप रेंग गया.

पीछे लोग कहते थे . .'रमेश और उसमें कोई दुश्मनी थी? . . .'वह रमेश बाबू के घर आया-जाया करता था. . .कोई कहा-सुनी हो गयी होगी, उसकी पत्नी'. . .कोई कहता. . .'वह भी ग्रेजुएट था. सोचा होगा इसे खत्म कर दूं, तो बाद में इस जगह पर मेरा चांस हो जायेगा'. . .पर वही जानता है ऐसा कुछ नहीं था. उसे खुद पता नहीं था, ऐसा क्यों हो गया? कैसे हो गया?

बचपन में पिताजी कहते थे. . .'हर समय कुछ न कुछ करता ही रहता है. या तो मिकेनिक बनेगा या इंजीनियर. . . .हाथ रुकता ही नहीं कभी इसका.'

अगले दिन पता लगा कि रमेश बाबू बुरी तरह घायल हुए हैं, गोली निकल गयी है. . .पर. . .आगे क्या होगा? उसे स्वयं भी तो नहीं पता कि उसका अपना क्या होगा. वह भी तो कहीं गहरे में घायल हुआ है. सहसा उसे रजनी की याद आयी, जो मीरा बाई की पंक्तियां सुनती थी—'घायल की गति घायल जाने.' पर यहां उसे कौन जान रहा है?

और वह पुनः घोड़े की तरह हांफ-हांफ करने लगा!

● पो. बॉक्स—20, श्रीनगर, गढ़वाल, (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तकें

बंगला उपन्यासों में सामाजिक जीवन

▣ श्रीराम वर्मा

'**सा**हित्य भवन' इलाहाबाद द्वारा बंगला उपन्यासों के हिंदी में अनुवादों की नयी शुरुआत हुई है, और ऐसे उपन्यासों का चयन भी किया है जो आधुनिक युग के हर तरह के पाठक के लिए जिज्ञासा और कौतूहल का केंद्र साबित हो सकें.

आशापूर्णा देवी के दो उपन्यास क्रमशः '**तीन छंद**' और '**राजकन्या**' (दोनों एक ही जिल्द में), रमापद चौधरी का '**लज्जा**' और चितरंजन माइती का '**मरियम**', इसी शृंखला प्रकाशित हुए हैं.

आशापूर्णा देवी और चितरंजन माइती के उपन्यासों के अनुवाद अलका मुखोपाध्याय ने किये हैं और रमापद चौधरी के उपन्यास का अनुवाद विमल मिश्र ने किया है. अनुवादकों ने सहज ही बंगला भाषा के हिंदी में खप जाने वाले अंदाज को बरकरार रखा है, इससे हिंदी समृद्ध हुई है. खासकर चितरंजन माइती की काव्य भाषा का अंदाज महत्त्व का है. कहीं-कहीं आशापूर्णा देवी और रमापद चौधरी के वाक्य और शब्द नया अर्थ-संभार देते प्रतीत होते हैं.

आशापूर्ण देवी कथा-संरचना और संवाद योजना में इतनी सिद्धहस्त हैं कि उनके दोनों उपन्यासों में कथा-प्रयोग एक लीला या नाटक जैसे लगते हैं. '**तीन छंद**' वास्तव में आजादी से पहले की, आजादी की, आजादी के बाद की पीढ़ियों की गाथा है, जिसके सारे सूत्र कविराज नीलकंठ के पास हैं. कविराज नीलकंठ एक ऐसे भारतीय चरित्र हैं, जिनमें अहिंसा , हिंसा, क्रांति, विस्फोट, मुक्ति, प्रेम, प्रेम के अनेक रूप, बचपन, किशोरावस्था, यौवन, वृद्धावस्था, सभी कुछ अतीत और वर्तमान में, आदर्श से अधिक द्रष्टा हैं. उनके भीतर अनेक चरित्र उदित-अस्त होते गये हैं. जीवन का सत्त्व और सत उनके पास है. वे इतिहास का छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से अनुलेखन करते हैं. उनकी श्रोता तपु भी रुग्ण होने के बावजूद स्वयं स्मृतिजीवी और कथाजीवी होने लगती है. वह जिंदगी को निचोड़ने के लिए ललक उठती है. छोटे-छोटे चरित्रों में अपार मार्मिकता है. उसी में एक अंतिम चरित्र है–संचयिता, जो मनोपटल पर अंकित हो जाता है.

'**राजकन्या**' बहुत ललित उपन्यास है. इसे लंबी कहानी भी कह सकते हैं. एक और यथार्थ के आमने-सामने है——भोक्ता किशोर और एक किशोरी के मर्मघटित प्रेम का संवाद-छल से भरा सुंदर नाटक. किशोरी संपन्न वर्ग की, किशोर विपन्न वर्ग का. किशोरी विपन्नता का नाटक करते-करते एक दिन अपने नेपथ्य से बाहर उद्घाटित हो जाती है. लेखिका ने बड़ी संजीदगी भरी नाटकीयता से अंत बड़ा सुखद किया है. इस उपन्यास में मित-कथन का सौंदर्य है और संवादों में नाटकीयता और कौतूहल. दोनों के इस प्रेमपूर्ण मर्म के भीतर करुण प्रसंग बहुत जीवंत हैं. इन दो के अतिरिक्त बाबा का चरित्र सबसे जानदार है.

रमापद चौधरी के '**लज्जा**' में अर्थ का किस तरह प्रभाव पड़ता है, किस तरह व्यक्ति वर्ग चरित्र बनकर परस्पर पहचान में भारी भूल कर बैठता है, दिखाया गया है. रेणु की अस्वाभाविक मनःस्थिति और उसके कभी के जटिलतम व्यवहार, स्नेह और उदारता की मांग करते हैं, लेकिन सब उसे पागल करार ही नहीं देते, पागल[खाने] भेज भी आते हैं. उसका व्यक्तित्व कु[चला] और दबा हुआ है. उस में यौवनजन्य ल[...] भी है. घोर उपेक्षा और दुत्कार में [...] अकेली स्नेहवंचित छूट गयी है. उपन्या[स] का हर पात्र अपने को एक-दूसरे का अजन[बी] पाता है. अपनत्व की सारी टूटी कड़ियों [को] जोड़ने वाला भोला भुक्तभोगी एक द्रष्टा [है] यथानाम यथागुण–अनिमेष. वह अपाहि[जों] का देवता है. वह सबके दुःख भोगता [है] लेकिन अपना दुःख बांट नहीं पाता.

चितरंजन माइती के '**मरियम**' [की] पटभूमि प्राकृतिक अतः चित्रात्मक [और] काव्यात्मक है. उनके संवाद और विव[रण] भी काव्यात्मक हैं. एक चित्रकार [और] 'मरियम' नाम की रिसेप्शनिस्ट लड़की [की] ऐसी प्रेम-गाथा, जिसमें साथ रहने की नि[रं]तरता कट-पिट गयी है. मरियम शारीरि[क] तौर पर मातृत्व से वंचित है, इसलिए श[ादी] नहीं करती. चित्रकार की पत्नी अपने [गुरु] के प्रति आसक्त है और अपनी संता[न] को छोड़कर गुरु के पास च[ली] जाती है. संतान गुरु की है. चित्रकार [उस] संतान को अपना लेता है. मरियम विवा[ह] विच्छिन्न है, चित्रकार के प्रति आदरपूर्[ण] आसक्त है. अंततः दोनों को जोड़ने वा[ली] कड़ी बनती है——वही संतान. चित्रकार [के] पास चित्र हैं और मरियम के पास मम[ता,] आत्मनिर्भरता और अपराजेय धैर्य, [इन] दोनों के अलावा एक है——मंसूर, जि[सका] निष्कपट, निस्वार्थ अटूट प्रेम है.

उपन्यास में परिवेश, संवाद और घट[ना]क्रम का अंग बनकर प्रस्तुत हुआ है.

——चर्चित पुस्तकें——

तीन छंद, राजकन्या
● आशापूर्णा देवी
मूल्य : 24 रुपये

लज्जा
● रमापद चौधरी
मूल्य : 15 रुपये

मरियम
● चितरंजन माइती
मूल्य : 12.50 रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूंजी और अर्थ के बीच आदमी की भूमिका!

कथात्मकता की सारी परंपरागत शर्तों को तोड़कर हिंदी कहानी को ल्कुल नंगा और बेनकाब करने तथा से कलावादिता से अलग जीवन के साथ जोड़ने वाले समकालीन कथाकारों के वि मधुकर सिंह का स्वर रूखड़ेपन और जुझारूपन के कारण महत्त्वपूर्ण हैं. नंजय वर्मा के शब्दों में: "इनकी कहानियां थात्मकता के मोह से मुक्त तो हैं ही, वे नी अपरंपरागत भी हैं कि कई बार हानियां ही नहीं लगती––सच्चाई के दहकते हुए शोलों की तरह लगता है न्हें जहां रखो, वहीं जलाते हैं और अपनी गह बनाते हैं. जिंदगी और कहानी की मा-रेखाएं आपस में घुल-मिल गयी हैं र यथार्थ अपनी सारी रूखड़ता और ती के साथ मूर्त हो गया है. . .इनका य जिंदगी की सीधी रगड़ से पैदा आ है और इसीलिए किसी भी कलात्मक साहित्यक एटीट्यूट का आग्रह लेकर हीं चलता है. ये कहानियां जिंदगी को तराश या बना-संवारकर नहीं, उसकी हीनता और अव्यवस्था के सारे दबावों ाथ पेश करना चाहती है."

वस्तुत: मधुकर सिंह की कहानियां ादी के आसपास उपजी उस पीढ़ी की ानियां हैं जो मौजूदा पूंजी-संचालित वस्था के शिकंजे से मुक्त होने के लिए यंरत हैं. इनकी अधिकांश कहानियां और उसके आसपास के मुक्ति-संघर्ष कहानियां हैं जिनका जन्म कल्पना की ानों से नहीं, बल्कि जीवन की रगड़ हुआ है. ये कहानियां मिलेजुले रूप क कैनवास हैं जिस पर सामयिक नैतिक, सामाजिक, आर्थिक जीवन हर समस्या कहीं तो संपूर्णता में और कोण-विशेष से बखूबी उभरी है. का तीखा व्यंग्य जगह-जगह पर मन-ष्क में खरोचें उत्पन्न करता है और की प्रत्येक कहानी के अंत में इतना झटका है कि पाठक का विचार क्रियाशील का रूप अख्तियार कर लेता है यही वह स्थल है जहां लेखक की रता पाठक की पक्षधरता बन जाती है. 'पहला पाठ' मधुकर सिंह की चुनी हुई इक्कीस कहानियों का संकलन है, जिसमें 'बाढ़' 'भाई का जख्म', 'दुश्मन', 'पूरा सन्नाटा', 'लहू पुकारे', 'कवि भुनेसर मास्टर', 'हरिजन सेवक', 'स्वर्ग का विश्वास', जैसी चर्चित कहानियों के अलावा 'पंच परमेश्वर का दुख' 'सुबल की भैंस', 'माटी कहे कुम्हार से', 'पहला पाठ' जैसी नयी कहानियां भी हैं. इन सारी कहानियों में मधुकर सिंह के लेखकीय सोच में क्रमश: घटित होता बदलाव साफ-बखूबी आगे की ओर विकसित हुआ है. **'भाई का जख्म' 'बाढ़'** तथा **'दुश्मन'** में ग्रामीण परिवेश और उसकी विसंगतियों को समझने-परखने में उनकी अंतर्दृष्टि और भी ज्यादा तीव्र हो उठी है. निस्संदेह ये कहानियां मधुकर सिंह की पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में तल्ख, उग्र और नुकीली हैं.

▣ उमाशंकर गांधी

'बाढ़' में भगवती प्रशासन के भ्रष्टाचार के खिलाफ जेहाद छेड़ती है. भगवती के लिए 'बाढ़' उतनी खतरनाक नहीं है. खतरा आदमी को सरकारी वर्ग से ज्यादा है. भगवती की लड़ाई सही अर्थों में आम आदमी की लड़ाई होनी चाहिए और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलनी चाहिए. **'उसका सपना'** मधुकर सिंह की लेखन-यात्रा का प्रतिमान है. नयी पीढ़ी की छिछली मानसिकता और उसकी खोखली सोचावट दिन-ब-दिन उसे खाती जा रही है. केशो युवा पीढ़ी के उन सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता है जो विचारहीन होकर मात्र रंगीन कल्पनाओं में जीते हैं और सच्चाइयों को या तो नकार जाते हैं या उनसे मुकर जाते हैं. केशो की पराजय अंततः आज के सुप्त युवा वर्ग की ही पराजय है. युवा वर्ग का बौद्धिक खोखलापन **'कालखंड'** में भी साफ-साफ उभरा है.

ग्रामीण परिवेश की विसंगतियों और सामाजिक व्यवस्था की भ्रांतियां **'लहू पुकारे आदमी'** में भी साफ तौर पर अन्वेषित हुई है. सामाजिक शोषण का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है कि समाज का उच्च वर्ग, निम्न वर्ग के प्रगति-मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दे? ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का आर्थिक पक्ष **'रक्तबीज'** में भी खुलकर आया है. अकाल का भय रामधन और गंगा काकी को भी उतना ही है जितना जीवन ठाकुर को, अंतर सिर्फ इतना है कि जीवन ठाकुर को अन्न-संचय की संभावित कटौती का भय है, लेकिन रामधन और गंगा काकी के लिए वर्षा जीवन-मृत्यु का प्रश्न है. दोनों वर्गों की संवेदना में यही और साफ अलगाव है. वर्ग-विभाजन की रेखाएं **'दुश्मन'**, **'लहू पुकारे आदमी'** की तरह **'रक्तबीज'** में भी स्पष्ट रूप में द्रष्टव्य है.

दुर्गंध में भी सर्वहारा वर्ग की ही संवेदना मुखरित हुई है. यदि मालकिन की बड़ी हवेली, मालकिन की न रहकर सफेदपोश नेताओं और उच्च वर्गीय सदस्यों की हो जाती है तो इससे पूरी व्यवस्था के साथ कौन-सा फर्क आ जाता है? पूंजी और अर्थ किस तरह आदमी को आदमी से अलग कर देते हैं, इस तथ्य को **'फिलहाल'** ने प्रत्यक्ष तौर पर उद्घाटित किया है. **'घर'** आदमी के छोटा पड़ते जाने की स्थिति को खुले रूप में चित्रित करती है. असंख्य मजदूरों को नेतृत्व देने वाला नायक प्रतिक्रियावादी छद्मवेशी शक्तियों के बीच घिरकर अपने को कमजोर महसूस करने लगता है और मात्र अपनी सहनशीलता को ही अपने 'चरित्र' की ही संपत्ति मानकर संतोष कर लेता है. वस्तुतः, यह भी विद्रोह की ही एक स्थिति है और कहानी का नायक विवशताओं के बीच इस स्थिति को पूरी तरह से झेलता है.

इन कहानियों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मानवीय यातनाओं को रचनात्मकता के स्तर पर मधुकर सिंह ने ईमानदारी के साथ उतारा है. □

चर्चित पुस्तक
पहला पाठ
● मधुकर सिंह
वाणी प्रकाशन 61-एफ, कमला नगर दिल्ली-7, मूल्य : 20 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

कहानी ही मंचित होती रही

नाट्य संस्था 'रंगशिविर' लखनऊ की ओर से 21 अक्तूबर को 'सारिका' की कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कृत युवा कथाकार संजीव की बहुचर्चित कहानी 'अपराध' का मंचन अरुण केडी के निर्देशन में बाल रवींद्रलय में किया गया.

नक्सली माहौल के बहाने समाज और सत्ता-व्यवस्था के बीच खुलासा तौर पर चलने-फलने वाली अपराधवृत्ति को विश्लेषित करती इस विस्फोटक कहानी 'अपराध' और उसके सारे संवादों तथा विवरण में निहित दृश्यों-बिंबों को निर्देशक समेत अभिनेता प्रहलाद शुक्ल, रामप्रकाश, दर्शिका, कीर्ति, अतुल 'शिव' राजवीर, सत्यव्रत, अरुण, राकेश, अमिताभ, वागीश, रवि और अशोक आदि ने दोहरी-तिहरी भूमिकाओं में अभिनय करते हुए साकार करने की सफल कोशिश की.

मंचसज्जा और वेशभूषा के पारंपरिक तामझाम से कटकर स्वयं कलाकारों द्वारा तैयार किये गये दृश्य (मकड़ी के जाले से घिरा कंट्रोलिंग टावर और मृत्यु का दृश्य) प्रभावशाली रहे. इस प्रस्तुति की एक विशेषता यह भी रही कि इसमें नाटक कहीं नहीं दिखा, मंच पर कहानी ही मंचित होती रही.

प्रहलाद शुक्ल, अरुण केडी और राकेश ने अभिनय की ऊंचाई को स्पर्श किया, शेष कलाकार सामान्य रहे. राकेश व सुशील के ध्वनि प्रभाव ने स्वाभाविक असर पैदा किया तथा राजवीर की आलोक व्यंजना ने प्रस्तुति को जीवंतता प्रदान की.

प्रस्तुति के अंत में 'रंगशिविर' ने दर्शकों के साथ सीधा संवाद कायम करने, उनके ताजा विचारों व सुझावों के साथ प्रस्तुति के तत्काल बाद ही ताजी प्रतिक्रिया के लिए खुली बातचीत भी करने का नया और महत्वपूर्ण सिलसिला भी अपनी इस प्रस्तुति के साथ शुरू किया. □

● दिनेश 'दीनू'

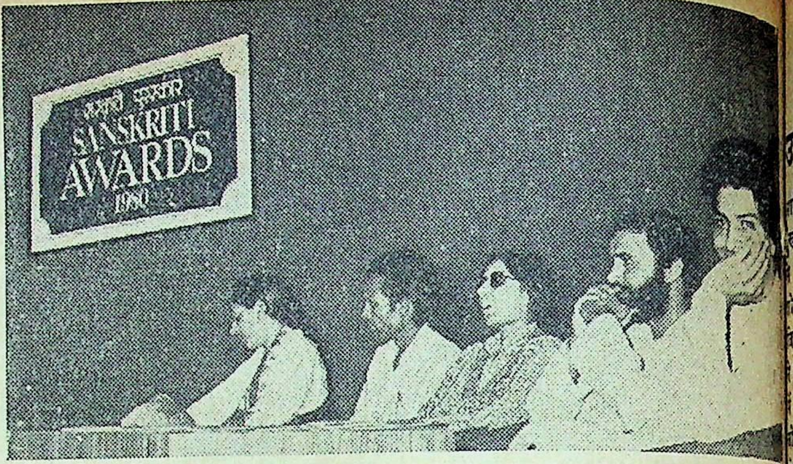

युवा प्रतिभा पुरस्कृत

पुरस्कारों की परंपरा, विशेष रूप से कला के क्षेत्र में कुछ ऐसी रही है कि किसी वृद्ध कलाकार को ही जब उसकी रचनात्मकता--कुछ अपवादों को छोड़कर, लगभग चुक जाती है, मिलता है. इधर संस्कृति प्रतिष्ठान ने इस दिशा में एक नया कार्य किया है. ये संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों--सृजनात्मक साहित्य, पत्रकारिता, ललितकला, रंगमंच और विशिष्ट सामाजिक उपलब्धि के क्षेत्र में हर वर्ष एक-एक पुरस्कार देते हैं. ये पुरस्कार 35 वर्ष से कम आयु के प्रतिभावान कलाकारों को दिये जाते हैं, पर इनका क्षेत्र दिल्ली तक ही सीमित है. हम आशा करते हैं कि देश के अन्य क्षेत्रों के युवाओं के लिए भी इस प्रकार के पुरस्कार दिये जाने की परंपरा बनेगी. इस वर्ष की पुरस्कृत प्रतिभाएं हैं:
चित्र में बायें से--प्रिया देवी (सृजनात्मक साहित्य), बनवारी (पत्रकारिता), गोगी सरोजपाल (ललितकला), एम. के. रैना (रंगमंच) तथा राजीव सेठी (विशिष्ट सामाजिक उपलब्धि) 'सारिका' परिवार की ओर से सभी पुरस्कृत कलाकारों को बधाई.

हिंदी दिवस या प्रायश्चित दिवस !

हिंदी-दिवस के अवसर पर भारतीय स्टेट बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, जयपुर द्वारा 'राजभाषा : अपेक्षाएं एवं उपलब्धिगत कठिनाइयां' विषय पर विचार-गोष्ठी हुई.

बैंक के मुख्य क्षेत्रीय प्रबंधक श्री गोवर्धन कथूरिया तथा भाषा विभाग के निदेशक श्री कलानाथ शास्त्री ने दावा किया कि हिंदी किसी भी भाषा से उन्नीस नहीं है, किंतु उन्होंने केंद्र और राज्य सरकारों के काम में हिंदी के अपर्याप्त प्रचार-प्रसार पर दुःख व्यक्त किया. पंजाब नेशनल बैंक के जयपुर स्थित आंचलिक कार्यालय में हिंदी अधिकारी श्री श्रीराम शर्मा का विचार था कि वर्तमान में हिंदी को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जा रहा है.

देवताओं की भाषा संस्कृत को हिंदी की जननी बताते हुए राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा. हरीराम आचार्य ने कहा कि इस समय हिंदी का प्रयोग मजबूरन होता है, आदतन नहीं. इसके बाद केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद्, भारतीय रिजर्व बैंक, जयपुर के सचिव कृष्णदत्त शर्मा ने कहा कि हिंदी को वह सम्मान और आत्मीयता नहीं मिल पा रही है, जिसकी वह वास्तव में अधिकारिणी है.

सहायक परिवहन आयुक्त कुमारी शमीम अख्तर को हिंदी प्रेमियों से यह शिकायत है कि वे हिंदी को लोगों पर जबर्दस्ती थोपने में लगे रहते हैं.

हिंदी दिवस को प्रायश्चित-दिवस के रूप में मनाने की सलाह देते हुए प्रभुनारायण नाट्याचार्य ने इस बात पर क्षोभ व्यक्त किया कि हम मात्र एक घंटे भी बिना विदेशी भाषा की सहायता लिये हिंदी में बात नहीं कर सकते.

गोष्ठी के मुख्य वक्ता कन्हैयालाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ड्राइंग-रूम में वटवृक्ष

उदयपुर में आदिवासी बालक-बालिकाओं में अपनी संस्कृति तथा अपने आदिम जीवन की विशेषताओं के प्रति ...द विश्वास प्रतिष्ठित कराने की दृष्टि ... राजस्थान में पहली बार 'आदिवासी ...ध संस्थान' ने समारोह आयोजित किया, इसमें 130 भील बालक-बालिकाओं ने भाग लिया. तीन दिन के इस समारोह ... भीलों के सांस्कृतिक एवं कलात्मक जीवन को उजागर करने वाली विविध ...कूद, तीरंदाजी, मेंहदी तथा भूमि ...डणा, चित्रकारी, नृत्य, गीत तथा ...तमाशों की प्रतियोगिताएं एवं वार्ता-...ख्यान आयोजित किये गये. इस समारोह ... वे बालक-बालिकाएं भी आये, जिन्होंने ...ट्रीय एवं प्रांतीय स्तर पर तीरंदाजी में ...र्ण, रजत एवं कांस्य पदक प्राप्त किये. ... मीटर रेंज में तीरंदाजी का राष्ट्रीय ...र्ण पदक पाने वाला तेरह वर्षीय ...जी तथा दिन-रात नाच मग्न रहती ... समारोह के आकर्षण रहे.

जनजाति विकास विभाग के आयुक्त ... विजय वर्मा ने ऐसे आयोजनों को शहरों ... प्रस्तुत करना 'जंगल के वटवृक्ष को ...ी ड्राइंग रूम में सजाना' कहा. □

डा. महेंद्र भानावत

...ने कहा कि अन्य भाषाभाषियों द्वारा ...ी को कठिन भाषा प्रचारित करना ...क सुनियोजित षड़यंत्र है. उन्होंने हिंदी ...षी लोगों को सलाह दी कि उन्हें पहले ... षड़यंत्र से उत्पन्न मुश्किलों से बचना ...ा, तदुपरांत आंतरिक झंझटों से. ...तरिक झझटों से उनका आशय अन्य ...ाओं के शब्दों के प्रयोग से था.

अंत में गोष्ठी के अध्यक्ष भारतीय स्टेट ... के क्षेत्रीय प्रबंधक श्रीरामनाथ ...ाई ने रामचरितमानस का उदाहरण ... हुए कहा कि हिंदी में इतने महान ..., लेखक, विद्वान आदि हैं कि उनके ...ित्व और व्यक्तित्व के सम्मोहन मात्र ... लोगों में हिंदी के प्रति प्यार पैदा किया ... सकता है. गोष्ठी का संचालन आकाश-...णी, जयपुर में कार्यक्रम अधिकारी श्री ...द वोहरा ने किया □

...कुमार टाक

पत्र-पत्रिकाएं

एक नन्हा-सा प्रयास

हिंदी में कला-पत्रिकाएं 'न' के बराबर रही हैं. विशुद्ध रूप से चित्रकला और मूर्तिकला को समर्पित पत्रिकाएं तो बहुत ही कम. कलाओं और उनके कलाकारों के संबंध में जानकारी विभिन्न पत्रिकाओं में समाहित स्तंभों के जरिये ही मिल पाती है. दिल्ली से श्रीमती विमल बाथम के संपादन में 'कला संगम' त्रैमासिक की सहयोगी मासिक पत्रिका के रूप में 'कला और कलाकार' (60 बी. डी. डी. ए. फ्लैट्स, नयी दिल्ली-14) का प्रकाशन उस दिशा में एक नन्हा-सा प्रयास है, जिसके जरिये भारतीय कला जगत की हलचल का हलका सा अंदाजा पाठक को जरूर मिल जाता है. इस नन्हीं सी शुरुआत के लिए साधुवाद! □

सीमित साधनों के बीच

विज्ञान जैसे-जैसे जिंदगी के नजदीक आता जा रहा है, वैसे वैसे उसकी जानकारी आम पाठकों को देना जरूरी होता जा रहा है. इस संदर्भ में वैज्ञानिक पत्रिकाओं की कमी खलती है. आज हिंदी में सिर्फ दो वैज्ञानिक पत्रिकाएं ही सामने हैं—एक है बंबई से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक 'वैज्ञानिक' (संपादक : अरविंद) और दूसरी दिल्ली से प्रकाशित होने वाली भारत सरकार की पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' पर ये पत्रिकाएं हिंदी पाठकों में वैज्ञानिक समझ पैदा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं.

अपने तीखे तेवरों और बेलाग टिप्पणियों के कारण साहित्यकारों के बीच जानी जाने वाले पत्रिका 'शनीचर' (सं: ललित कुमार शर्मा 'ललित') का कथांक अभी अभी आया है, जिसका शनीचरीय बनाम संपादकीय पढ़कर स्वर्गीय पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की उग्रबयानी ताजा हो जाती है. प्रस्तुत अंक में ठाकुरप्रसाद सिंह, सुभाष पंत, चंद्रप्रकाश पांडेय तथा सुशील शुक्ल की कहानियों के अलावा समकालीन हिंदी कहानी पर डॉ. मालती शर्मा का लेख महत्वपूर्ण है.

धार और डालमिया नगर जैसे छोटे कस्बों से 'यथार्थ' (संपादक : स्वप्निल शर्मा) तथा 'सोनमाटी' (संपादक : कृष्ण किसलय) जैसी पत्रिकाएं निकलती हैं. 'यथार्थ' के ताजा अंक में प्रेमचंद की प्रासंगिकता पर कपिल तिवारी का लेख समसामयिक स्थितियों पर प्रकाश डालता है. 'सोनमाटी' का यह अंक प्रेमचंद अंक है, जिसमें डा. रामविलास शर्मा, डा. बालेंदु शेखर तिवारी तथा कृष्ण कमलेश के लेख प्रेमचंद को और नजदीक से समझने में मदद करते हैं. ये पत्रिकाएं अपने सीमित साधनों में जो काम कर रही हैं, उसके लिए साधुवाद की हकदार हैं. □

● बलराम

उन ने कहा था

● सेक्स मेरे लिए संपूर्णता के साथ उसकी पुष्टि है, जिसे मैं प्यार करती हूं. प्यार के बिना मेरे लिए सेक्स असंभव है. मैं मानवतावादी हूं, मानव मन पर मुग्ध हूं और उसे समझना चाहती हूं.

▣ अमृता प्रीतम (ईव्स वीकली)

● मस्जिदों के बाहर बाजे बजते हैं तो इबादत में खलल पड़ जाता है. मंदिरों में शंख और घड़ियाल न बजाओ तो पूजा नहीं होती. उपासकों की मंजिल एक ही है. एक ही चक्की का आटा खाते हुए दोनों एक ही जगह से रवाना होते हैं, पर एक का रास्ता दूसरे के रास्ते का रोड़ा बन जाता है.

▣ किट्टू, (रविवार)

● अधिकांश पत्रकार आसानी से खरीदी जा सकने वाली वेश्याओं की तरह हैं.

▣ अरुण शौरी (सोसायटी)

● यह सत्य किसी से छिपा नहीं है कि मध्य प्रदेश सरकार ने थोक खरीद उन्हीं पुस्तकों की की है, जिनके लेखक कुछ साहित्यिक अफसरों की मंडली के हैं या जो मध्य प्रदेश सरकार में हैं या उन प्रकाशकों के यहां से छपे हैं, जिनकी उन अफसरों से सांठगांठ है.

▣ रामदरश मिश्र (संचेतना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार : पृष्ठ १९ से जारी

लिखते समय आप किन्हीं 'मास्टर्स' को पढ़ना पसंद करते हैं?

'मास्टर्स' को भी और नये लेखकों को भी मैं बराबर पढ़ता रहता हूं.

जब आप कहानी लिख रहे होते हैं तो उस बीच क्या आपको यह जरूरत महसूस होती है कि इस बीच मुझे इन-इन लेखकों को पढ़ना चाहिए.

उस समय मुझे ऐसी जरूरत नहीं महसूस होती.

ऐतिहासिक कथा लेखन में आपकी खासी रुचि है और वह इस बीच बहुत कम हो रहा है. इसके पीछे क्या कारण हैं? इतिहास पढ़ने की लोगों की दृष्टि खो गयी है या इतिहास को उल्था करके अपने लिए इस्तेमाल करने का लेखन में जो जरिया बनता है, वह लोग नहीं कर पा रहे हैं?

यह तो सही है कि आजकल जागरूक व्यक्ति के लिए इतिहास की दृष्टि अवश्य भ्रमपूर्ण-सी हो गयी है. जिन मूल्यों और स्थितियों के बीच से हम गुजर रहे हैं उनमें इतिहास के पुनर्लेखन और इतिहास की पुनर्व्याख्या की जरूरत कदम-कदम पर महसूस हो रही है, कल इतिहास पढ़ते समय जो बात बड़ी गौरवपूर्ण लगती थी आज ऐसा लगता है कि सचमुच वह बात क्या उतनी गौरवपूर्ण है. इसलिए इतिहास को सही संदर्भों में समझाने की दृष्टि में भ्रम पैदा हुआ है, स्वयं इतिहासकारों में हुआ है. लेखक को भी यदि इतिहास की सही समझ नहीं है तो उसमें भी यह भ्रम हो जाना स्वाभाविक है. इसलिए ऐतिहासिक लेखन आज कठिन भी है और जोखिम भरा भी. दूसरी एक बात भी है. हिंदी कहानी में पंद्रह-बीस वर्ष पहले कुछ लोगों ने यह बात भी कही कि ऐतिहासिक लेखन समकालीन यथार्थ से पलायन का लेखन है. कुछ इस कारण से समाकालीन लेखन का माहौल ऐतिहासिक लेखन के विरोध में चला गया.

मेरी इतिहास में रुचि है और मैं ऐतिहासिक उपन्यास लिखना चाहता हूं.

इतिहास के किस हिस्से में आपकी विशेष रुचि है?

प्रागैतिहासिक काल में भी मेरी रुचि है और मध्ययुग—आठवीं शती से अठारहवीं शती तक के भारतीय इतिहास में मेरी विशेष रुचि है.

आप बुरा न मानें तो कहूं कि आप पर लोगों ने अक्सर जनसंघी लेबल चिपकाया. जब आपकी सोच पर कुछ लोग इस तरह की चर्चाएं जोड़ देते हैं तो कैसा लगता है?

मुझे खुशी है कि आपने यह बात पूछी. एक बात कहूं, मेरे लेखन में से या मेरे विचारों में से आज तक कभी किसी ने जनसंघी दृष्टिकोण ढूंढ़कर दिखाने की कोशिश नहीं की. यह बात बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण है कि व्यक्ति पर, उसके लेखन पर, उसकी सोच पर, उसके विचारों पर विश्वास न करके लोग विश्वास उस बात पर करना चाहते हैं जो उसके संबंध में कुत्सित ढंग से प्रचारित किया जाता है. एक बात मैं यहां स्वीकार कर लूं. कानपुर के अपने विद्यार्थी जीवन में मेरा संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ से रहा. धीरे-धीरे मैंने अनुभव किया कि जिन धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक और व्यापक दृष्टिकोण वाले मूल्यों के आधार पर हम अपने देश का निर्माण करना चाहते हैं उनमें संघ की कट्टर हिंदूवादी विचारधारा सहायक नहीं है, बल्कि विघटनकारी है. पंजाब में वर्षों तक संघ/जनसंघ का दृष्टिकोण सिक्ख-विरोधी रहा और अपने 'हिंदूपन' की झोंक में उन्होंने अपनी मातृभाषा पंजाबी तक का विरोध किया. मुझे लगा कि जिस तलवार को धार देने में मैं कहीं सहायक हो रहा हूं, वह तलवार तो मेरी ही गर्दन काटने को तैयार है. उस समय (सन् 1950-55 के आसपास) पंजाब में भाषा के संबंध में इस प्रकार की जो सांप्रदायिक आवाज संघ/जनसंघ के मंचों से उठायी जा रही थी, मैंने उसका कड़े शब्दों में विरोध किया था. मेरा संबंध था, इससे मैंने कभी इन्कार नहीं किया, वर्षों से मैं उस विचारधारा का पोषक या समर्थक नहीं हूं. यह मेरे अपने स्वतंत्र विचार और चिंतन की भूमिका पर है.

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि संघ/जनसंघ हिंदू सांप्रदायिकता से जुड़ी संस्थाएं हैं तो मैं—एक सिक्ख, जो हिंदू नहीं है, हिंदू सांप्रदायिकता से क्यों जुड़ूंगा? सांप्रदायिकता से जुड़ना होगा तो मैं अकाली बनूंगा. परंतु मैं सभी प्रकार की सांप्रदायिक सोच और नीतियों के विरुद्ध हूं और मानता हूं कि इस विभिन्न धर्मों, मतों, भाषाओं परंपराओं और संस्कृतियों के देश में धार्मिक, जातिगत या भाषाई सांप्रदायिक सोच इस देश की प्रगति और एकता में बहुत हानिकारक सिद्ध होगी.

इस संबंध में एक बात और कहूंगा, वे लोग जो अपने आपको प्रगतिशील और असांप्रदायिक कहते हैं और मुझे सांप्रदायिक कहते हैं, उन्हें मैं भी अच्छी तरह जानता हूं. यह बात मैं बड़े विश्वास से कह सकता हूं कि ये लोग अंदर से अत्यंत संकीर्ण मनोवृत्ति वाले लोग हैं. इनमें बेहिसाब जातिगत संकीर्णता मैंने देखी है जो किसी भी सांप्रदायिक भाव वाले व्यक्ति के सिर को झुका देगी. ये मुझे कट्टर ब्राह्मण, ठाकुर, वैश्य, कायस्थ नजर आते हैं. ये लोग अपनी जातिगत संकीर्णताओं का भरसक पोषण करते हैं और उसका लाभ उठाते हैं साथ ही बहुत प्रगतिशील होने का दावा भी करते हैं.

> सरकारों की खरीद नीति इस तरह की नहीं होनी चाहिए कि लेखकों/प्रकाशकों को यह महसूस कराया जाये कि तुम्हें खरीदा जा रहा है. इस नीति से लेखकों में राज्याश्रित होने के भाव को बढ़ावा मिलता है. इसका विरोध होना चाहिए.

अगले अंक में

"सारी लड़ाई ताकत और दौलत की लड़ाई है. अब इस लड़ाई को चाहे धर्म के नाम पर लड़ो, चाहे देश के नाम पर . . ."

इसी तरह के सवालों से जूझती डॉ. महीप सिंह की ताजा कहानी

सहमे हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

दिसंबर–८० : अंक–१

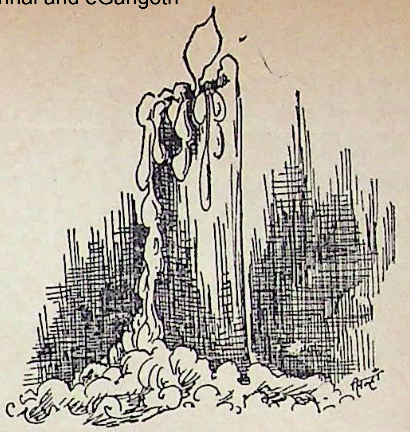

सारिका

घर-परिवार और पुस्तकालय का स्थायी महत्त्व

-कृपया, मेरा काम कर दें!
-क्यों, आप मेरे क्या लगते हैं?
-जी, कुछ नहीं !
-कोई सिफारिश है ? . . .

...फारिश, जान-पहचान और रिश्वत! . . .आम तौर ...र यही माना जाने लगा है कि इनके बिना आज ...निया में कोई काम नहीं बनता. यह भ्रष्टाचार हम ...र इतना हावी क्यों हो गया है और इसका शिकंजा ...में जीते-जागते किस गर्त में धकेल रहा है? इस बार ...ढ़िए भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, दंगा-फसाद, ...कारी, वदसलूकी जैसे अमूर्त पिशाचों से साक्षात्कार ...र्ता—

...दीप सिंह, **सुधा चंदोला, मनहर चौहान, सुरेंद्र** ...रोड़ा, सागर सरहदी, **मुकेश सेठी, चंद्रमोहन प्रधान** ...की सशक्त कहानियां

...दा सही सलामत है

...वींद्र कालिया के अजीबो-गरीब चरित्रों से कथात्मक ...रिचय करवाते धारावाही उपन्यास की अगली किस्त

● अनजानी इतिहास कथाएं

पतझड़ का अंतिम गुलाब

1774! जब भारत पर कब्जा करने के लिए फ्रांस और इंग्लैंड परस्पर जूझ रहे थे. तब मात्र पंद्रह वर्षीय फ्रांसीसी मैडम टैलीरेंड ने तहलका मचा दिया. **बाला दुबे** की जबानी पढ़िए उसी मैडम के उत्थान और पतन की रोमांचक कहानी.

हम कहें गांव की गाथा

शहरों की तेज-रफ्तार और बारौनक जिंदगी से दूर भारत के गांवों में क्या रहा है? वहां लोग कैसे रहते हैं? कैसे जीते हैं? शहर के बारे में उनकी क्या राय है? वे अपने बारे में क्या सोचते हैं? आदि बहुत-सी बातों के आधार और कारण रेखांकित करती **शिवसागर मित्र** की रिपोर्ताज कथा. इन्हीं संदर्भों में किसानी जीवन को रेखांकित करती इनकी एक रिपोर्ताज कथा आप 'प्रेमचंद विशेषांक' में पढ़ चुके हैं.

आपबीती

खुद पर गुजरी वे लोमहर्षक घटनाएं, जिनमें आप मौत के मुंह से वापस आ गये—पाठकों की आपबीतियों में समाये साहस को लाखों लोगों के बांटने वाला ताजा स्तंभ.

पाठकों का पन्ना, जरिया-नजरिया, तस्वीर बोलती है, लघुकथाएं, गज़लें, गपशप, कार्टून, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, पत्र-पत्रिकाएं, पढ़ते-पढ़ते, उनने कहा था—आदि स्थायी स्तंभों सहित—

दो रुपये में एक पूरी किताब—रोचक, ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे कम क़ीमत में सबसे ज़्यादा सफ़ाई

दूसरी सब डिटर्जेण्ट बार से कहीं ज़्यादा अच्छी, कहीं ज़्यादा किफ़ायती और साबुनों से ११/२ गुना ज़्यादा शक्तिशाली!

नीली स्वस्तिक
डिटर्जेण्ट धुलाई की बार

एक बार स्वस्तिक बार... फिर हमेशा स्वस्तिक बार

Shilpi DM 9 A/80 Hin

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

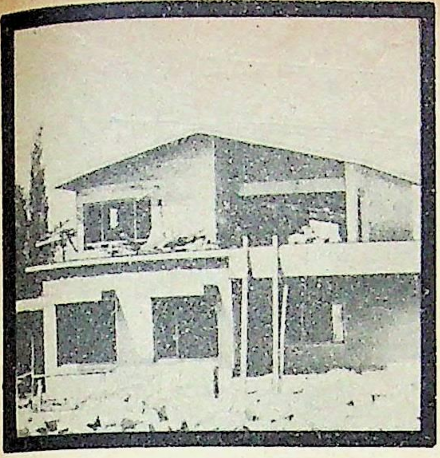

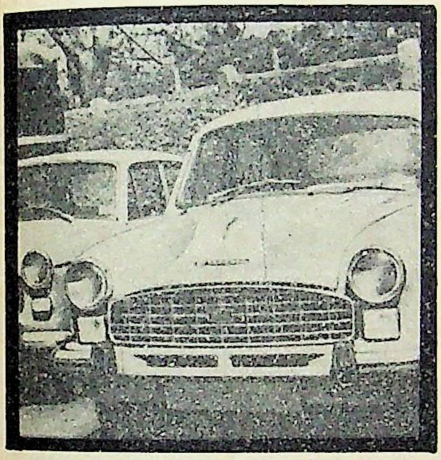

आप और कौन-कौन से खर्चों के लिए योजना बना रहे हैं?

केनरा बैंक आपकी योजनाएँ सफल बनाता है.

भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर और बचत कर आप जो चाहें खरीद सकते हैं. केनरा बैंक की **कामधेनु जमा योजना** की मदद से आप भविष्य के खर्चों की योजना बना सकते हैं.

आप कार, स्कूटर या अपना घर लेना चाहते हैं ? बच्चों की शिक्षा या उनके विवाह के लिए चिन्तित हैं ? तो **कामधेनु योजना** आपके काम आयेगी... आपका धन बढ़ाकर ज्यादा रकम दिलायेगी.

इसमें आपको अपनी ज़रूरत की रकम का छोटा-सा हिस्सा ही जमा करना होगा. बस **कामधेनु** में जमा की जानेवाली रकम और अवधि का फैसला आपको करना है. आपको ब्याज पर ब्याज मिलेगा... हर महीने अच्छी कमाई होगी और रकम दूनी से भी ज्यादा हो जायेगी.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं :
विद्यानिधि, निरंतर और **बालक्षेम**

कामधेनु जमा योजना

केनरा बैंक
(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में १२०० से भी अधिक शाखाएँ.

maa CB 5 Hin B 80

[illegible] ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : [illegible] नरेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, [illegible]-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटिफ्थ रोड, इग्मोर, [illegible]-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; [illegible] मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/

254
2/12/80

everest/80/PP/333 hn

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar